श्रीः ।

श्रीचाणक्यविरचित-

चाणक्यनीतिदर्पणः ।

पद्यगद्यभाषाटीकासमेतः ।

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक-लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम् प्रेस.

कल्याण-मुंबई.

॥ श्रीः ॥

श्रीचाणक्यविरचितः

चाणक्यनीतिदर्पणः

पंडितमिहिरचन्द्रशर्मनिर्मित-

पद्यगद्यभाषाटीकासमेतः ।

तेनैव संशोधितश्च ।

सोयम् ।

श्रीकृष्णदासात्मज-गंगाविष्णुना

स्वकीये " लक्ष्मीवेंकटेश्वर " मुद्रणालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।

संवत् १९८२, शके १८४७.

कल्याण-मुंबई.
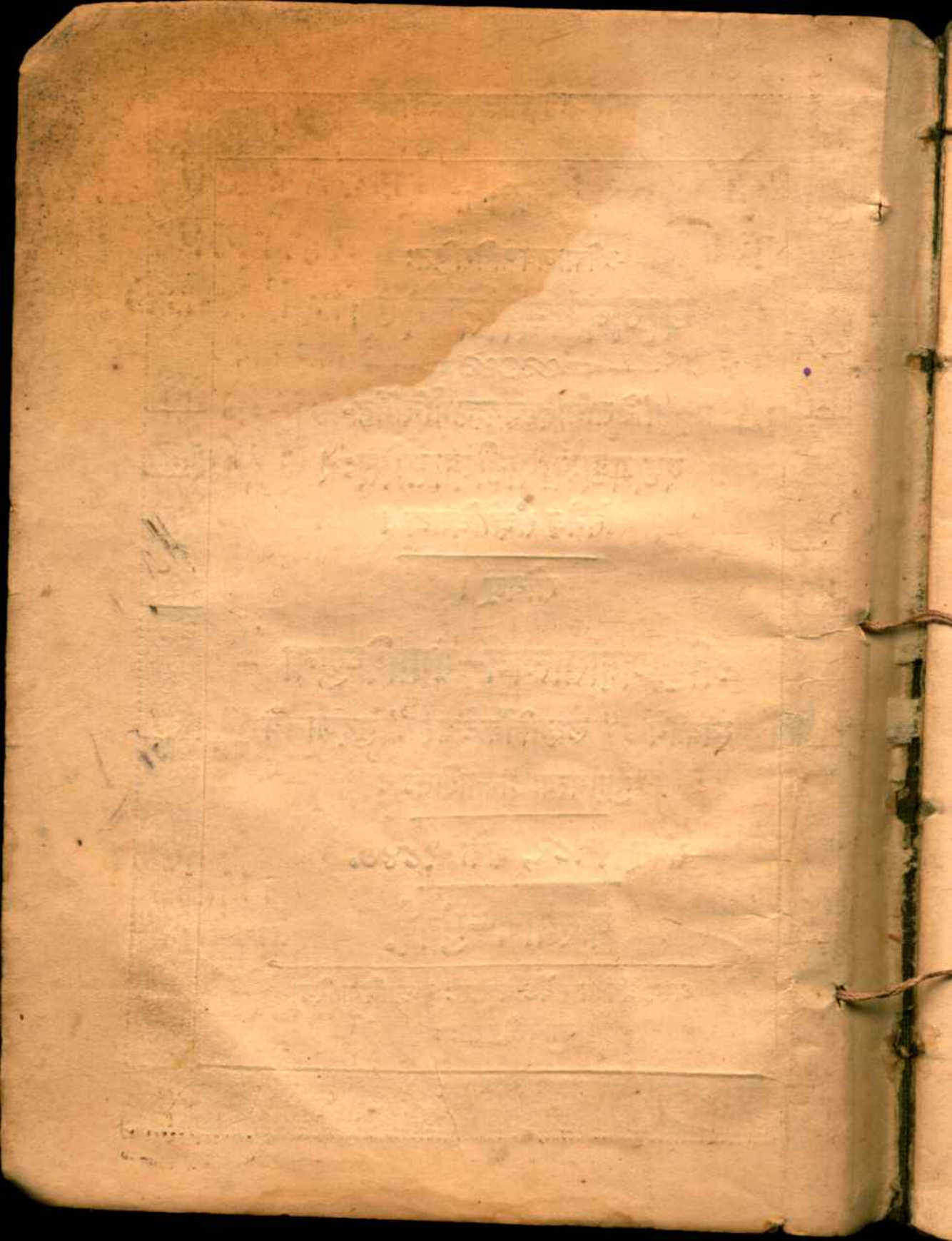
श्रीगणेशाय नमः ।

अथ चाणक्यनीतिदर्पणः ।

भाषाटीकासहितः ।

अथ प्रथमोऽध्यायः १ ।

प्रणम्य शिरसा विष्णुं त्रैलोक्याधिपतिं प्रभुम् ॥
नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीतिसमुच्चयम् ॥१॥

सोरठा—करि शिरसन परनाम, त्रिभुवनपति जगदीशको ।
कहिहौं नीति ललाम, शास्त्रनसे संग्रह किये ॥ १ ॥

भा० टी०—तीनों लोकोंके पालन करनेवाले सर्वशक्तिमान् विष्णुको शिरसे प्रणाम करके अनेक शास्त्रोंमेंसे निकालकर " राजनीतिसमुच्चय " नामक ग्रन्थको कहताहूँ ॥ १ ॥

अधीत्येदं यथाशास्त्रं नरो जानाति सत्तमः ॥
धर्मोपदेशविख्यातं कार्याकार्यं शुभाशुभम् ॥२॥

सोरठा—यथाशास्त्र पढिबेसुं, मानुष या कह जानही ।
विदित धर्म उपदेश, कार्याकार्यहि शुभ अशुभ ॥ २ ॥

भा०टी—जो इसको विधिवत् पढकर धर्मशास्त्रमें प्रसिद्ध शुभकार्य और अशुभ कार्यको जानता है वह अति उत्तम गिनाजाताहै ॥२ ॥

तदहं संप्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया ॥
यस्य विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रपद्यते ॥ ३ ॥

सोरठा–कहिहौं आछे तौन, लोगनके मैं हेतुहित ।
जानत मात्रहि जौन, प्राप्त होय सर्वज्ञता ॥ ३ ॥

भा० टी०–मैं लोगोंके हितकी वांछासे उसको कहूँगा जिसके ज्ञानमात्रसे सर्वज्ञता प्राप्त होजाती है ॥ ३ ॥

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेन च ॥
दुःखितः संप्रयोगेण पंडितोऽप्यवसीदति ॥४॥

दोहा–दुष्टतिया पोषण किये, मूर्ख शिष्य उपदेश ।
औ दुखियन व्योहारसे, विबुधहु लहैं कलेश ॥ ४ ॥

भा० टी०–निर्बुद्धि शिष्यको पढानेसे, दुष्ट स्त्रीके पोषणसे और दुःखियोंके साथ व्यवहार करनेसे पंडितभी दुःख पाता है ॥ ४ ॥

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः ॥
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः ॥ ५ ॥

दोहा–दुष्टा भार्या मित्र शठ, उत्तरदायक दासु ।
तासु मृत्यु संशय नहीं, सर्पवास गृह जासु ॥ ५ ॥

भा०टी०–दुष्ट स्त्री, शठ मित्र, उत्तर देनेवाला दास। और सांप रहनेवाले घरमें वास ये मृत्युस्वरूपही हैं इसमें संशय नहीं ॥ ५ ॥

आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि ॥
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥ ६ ॥

दोहा–विपतिहेतु रक्षै धनहि, धनते रक्षै नारि ।
रक्षै दारा धनहिते, आतम नित्य विचारि ॥ ६ ॥

भा० टी०–आपत्ति निवारण करनेके लिये धनको बचाना चाहिये धनसेभी स्त्रीकी रक्षा करनी चाहिये सब कालमें स्त्री और धनसे अपनी रक्षा करनी उचित है ॥ ६ ॥

आपदर्थे धनं रक्षेच्छ्रीमतश्च किमापदः ॥
कदाचिच्चलिता लक्ष्मीः संचितापि विनश्यति७॥

दोहा–आपदहित धन राखिये, धनिहि आपदा कौन ।
सञ्चितहू नशि जात है, जो लक्ष्मी करु गौन ॥ ७ ॥

भा० टी०–विपत्ति निवारणके लिये धनकी रक्षा करनी उचित है श्रीमानोंको भी क्या आपत्ति आती है ? हां कदाचित् दैवयोगसे लक्ष्मी चलित हो तो संचित भी नष्ट होजाती है ॥ ७ ॥

यस्मिन्देशे न संमानो न वृत्तिर्न च बांधवः ॥
न च विद्यागमोप्यस्ति वासं तत्र न कारयेत्॥८॥

दोहा–नहिं वृत्ति नहिं बंधु है, नहीं मान जेहि देश ।
विद्याहू आगम नहीं, तहां वास नहिं वेश ॥ ८ ॥

भा० टी०-जिस देशमें न आदर, न जीविका, न बन्धु, न विद्याका लाभ है वहां वास नहीं करना चाहिये ॥ ८ ॥

धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः ॥
पञ्च यत्र न विद्यंते न तत्र दिवसं वसेत् ॥ ९ ॥

दोहा-भूप नदी वेदज्ञ धनि, पँचयें वैद्य गनाय ।
ये पांचों जहँ नहिं तहां, वसिय न दिवसहुं जाय ॥ ९ ॥

भा० टी०-धनिक, वेदका ज्ञाता ब्राह्मण, राजा, नदी और पांचवां वैद्य ये पांच जहां विद्यमान नहीं हैं तहां एक दिनभी वास नहीं करना चाहिये ॥ ९ ॥

लोकयात्राभयं लज्जादाक्षिण्यं त्यागशीलता ॥
पंच यत्र न विद्यंते न कुर्यात्तत्र संगतिम् ॥ १० ॥

दोहा-भली जीविका लाज भय, और दक्षता दान ।
ये पांचों जहँ नहिं तहां, करै न संग सुजान ॥ १० ॥

भा० टी०-जीविका, भय, लज्जा, कुशलता, देनेकी प्रकृति जहां ये पांच नहीं वहांके लोगोंके साथ संगति न करनी चाहिये ॥ १० ॥

जानीयात्प्रेषणेभृत्यान्बान्धवान्व्यसनागमे ॥
मित्रं चापत्तिकाले तुभार्यांचविभवक्षये ॥ ११ ॥

दोहा-परिखिय सेवक पठै करि, बंधु व्यसनको पाय ।
विपति परे पर मित्र कहँ, तिय जब विभव नशाय ॥ ११ ॥

भा० टी०—काममें लगानेपर सेवकोंकी, दुःख आनेपर बान्धवोंकी, विपत्तिकालमें मित्रकी और विभवके नाश होनेपर स्त्रीकी परीक्षा हो जाती है ॥ ११ ॥

आतुरे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुसंकटे ॥
राजद्वारे श्मशानेचयास्तिष्ठतिसबांधवः ॥ १२॥

दोहा—आतुरता दुखहू परे, शत्रुसंकटो पाय ।
राजद्वार मसानमें, साथ रहै सो भाय ॥ १२ ॥

भा० टी०—आतुर होनेपर, दुःख प्राप्त होनेपर, काल पडनपर वैरियोंसे संकट आनेपर, राजाके समीप और श्मशानपर जो साथ रहता है वही बन्धु है ॥ १२ ॥

योध्रुवाणिपरित्यज्यह्यध्रुवंपरिषेवते ॥
ध्रुवाणितस्यनश्यंतिह्यध्रुवंनष्टमेवहि ॥ १३ ॥

दोहा—जो ध्रुव वस्तुन त्यागिकै, रहै अध्रुवहि सेइ ।
ध्रुवहु तासु नाशि जात है, अध्रुव रह्यो नसेइ ॥ १३ ॥

भा० टी०—जो निश्चित वस्तुओंको त्यागकर अनिश्चितकी सेवा करता है उसके निश्चित वस्तुओंका नाश हो जाता है अनिश्चित तो नष्टही है ॥ १३ ॥

वरयेत्कुलजांप्राज्ञोविरूपामपिकन्यकाम् ॥
रूपशीलांननीचस्यविवाहःसदृशेकुले ॥ १४ ॥

दोहा—कन्या वरै कुलीनकी, यदपि रूपकी हान ।
रूपशील नहिं नीचकी, कीजै ब्याह समान ॥ १४ ॥

भा० टी०–बुद्धिमान् उत्तम कुलकी कन्या कुरूपाभी हो उसे वरै नीच कुलकी सुन्दरी हो तौभी उसको नहीं वरै, इस कारण कि, विवाह तुल्य कुलमें विहित है ॥ १४ ॥

नखिनांचनदीनांचशृंगिणांशस्त्रपाणिनाम् ॥
विश्वासोनैवकर्तव्यःस्त्रीषुराजकुलेषु च ॥ १५ ॥

दोहा–सींग और नंहके पशुन, शस्त्र लिये जो होय ।
नदी राजकुल अरु तियन, मत विसवासो कोय ॥ १५ ॥

भा० टी०–नदियोंका, शस्त्रधारियोंका, नखवाले और शींगवाले जीवोंका, स्त्रियोंमें और राजकुलपर विश्वास नहीं करना चाहिये॥१५॥

विषादप्यमृतंग्राह्यममेध्यादपिकांचनम् ॥
नीचादप्युत्तमांविद्यांस्त्रीरत्नंदुष्कुलादपि ॥ १६ ॥

दोहा–अमिय लीजिये विषहुसे, अशुचिहुमेंते सोन ।
नीचहुते विद्या भली, दुष्ट कुलहु तिय लोन ॥ १६ ॥

भा०टी०–विषमेंसे अमृतको, अशुद्ध पदार्थोंमेंसे भी सोनेको, नीचसेभी उत्तम विद्याको और दुष्टकुलसे भी स्त्रीरत्नको लेना योग्य है ॥१६॥

स्त्रीणांद्विगुणआहारोलज्जाचापिचतुर्गुणा ॥
साहसंषड्गुणंचैवकामश्चाष्टगुणः स्मृतः ॥ १७ ॥

दोहा–नारिनमें भोजन दुगुन, लज्जा चौगुन होइ ।
छहगुन साहस होतहैं, काम अठगुना गोइ ॥ १७ ॥

भा० टी०-पुरुषसे स्त्रियोंका आहार दूना, लज्जा चौगुनी, साहस छःगुना और काम आठगुना अधिक होता है ॥ १७ ॥

इति प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः २.

अनृतंसाहसंमायामूर्खत्वमतिलोभता ॥
अशौचत्वंनिर्दयत्वंस्त्रीणांदोषाःस्वभावजाः ॥१॥

दोहा-तिरियन होत स्वभावसे, माया साहस झूँठ ।
निर्दय अशुचि कंजूसपन, और गुणनमें झूँठ ॥ १ ॥

भा० टी०-असत्य, विना विचार किसी काममें झटपट लगजाना, छल, मूर्खता, लोभ, अपवित्रता और निर्दयता ये स्त्रियोंके स्वाभाविक दोष हैं ॥ १ ॥

भोज्यंभोजनशक्तिश्चरतिशक्तिर्वरांगना ॥
विभवोदानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम् ॥२॥

दोहा-भोज्यवस्तु भोजनसकति, सुंदर सुरति उमङ्ग ॥
विभव दानसामरथिहू, मिलै बडे तपसङ्ग ॥ २ ॥

भा० टी०-भोजनके योग्य पदार्थ और भोजनकी शक्ति, सुन्दर स्त्री और रतिकी शक्ति, ऐश्वर्य और दानशक्ति इनका होना थोडे तपका फल नहीं है ॥ २ ॥

यस्यपुत्रोवशीभूतोभार्याछन्दानुगामिनी ॥
विभवेयश्चसन्तुष्टस्तस्यस्वर्गइहैवहि ॥ ३ ॥

दोहा—नारी इच्छागामिनी, पुत्र होइ बस जाहि ।
विभव पाइ सन्तोष जेहि, इहै स्वर्ग है ताहि ॥ ३ ॥

भा० टी०—जिसका पुत्र वशमें रहताहै और स्त्री इच्छाकेअनुसार चलती है और जो विभवमें सन्तोषयुक्त रहता है उसको स्वर्ग यहांही है ॥ ३ ॥

तेपुत्रायेपितुर्भक्ताः स पितायस्तुपोषकः ॥
तन्मित्रंयत्रविश्वासःसाभार्यायत्रनिर्वृतिः ॥ ४ ॥

दोहा—सो सुत जो पितुभक्त है, जो पालै पितु सोय ।
मित्र सोइ विश्वास जहँ, तिय सोइ जहँ सुख होय ॥४॥

भा० टी०—वही पुत्र है जो पिताका भक्त है, वही पिता है जो पालन करताहै, वही मित्र है जिसपर विश्वास है, वही स्त्री है जिससे सुख प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥

परोक्षेकार्यहन्तारंप्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ॥
वर्जयेत्तादृशंमित्रंविषकुम्भंपयोमुखम् ॥ ५ ॥

दोहा—पाछे काम नसावही, मुखपर मीठे बैन ।
वरजै ऐसे मित्रको, पयमुख घटाविष ऐन ॥ ५ ॥

भा० टी०–आँखके ओट होनेपर काम बिगाडे, सन्मुख होनेपर मीठी २ बात बनाकर कहे ऐसे मित्रको मुँहडेपर दूधसे और सब विषसे भरे घडेके समान छोडदेना चाहिये ॥ ५ ॥

नविश्वसेत्कुमित्रेच मित्रेचापिनविश्वसेत् ॥
कदाचित्कुपितंमित्रं सर्वगुह्यंप्रकाशयेत् ॥ ६ ॥

दोहा–विश्वासौ नहिं मित्रको, त्यों कुमित्रहू पास ।
रूठ्यो मित्र कदापि तो, कुरु सब मर्म प्रकास ॥ ६ ॥

भा० टी०–कुमित्रपर विश्वास तो किसी प्रकारसे नहीं करना चाहिये और सुमित्रपर भी विश्वास न रक्खे, इसका कारण यह कि, कदाचित् मित्र रुष्ट होय तो सब गुप्त बातोंको प्रसिद्ध कर दे ॥६॥

मनसाचिन्तितंकार्यंवाचानैवप्रकाशयेत् ॥
मन्त्रेणरक्षयेद्गूढंकार्यंचापिनियोजयेत् ॥ ७ ॥

दोहा–मनके सोचे कामका, नाहिन करै प्रकाश ।
मंत्र सरिस रक्षा करै, काम बनावै खास ॥ ७ ॥

भा० टी०–मनसे सोचे हुए कामका प्रकाश वचनसे न करे किंतु मंत्रसे उसकी रक्षा करे और गुप्तही उस कार्यको काममेंभी लावे ॥७॥

कष्टंचखलुमूर्खत्वंकष्टंचखलुयौवनम् ॥
कष्टात्कष्टतरंचैवपरगेहनिवासनम् ॥ ८ ॥

दोहा—मूरखता अरु तरुणता, हैं दोऊ दुखदाय ।
परघर वसिबो कष्ट अति, नीति कहत अस गाय ॥ ८ ॥

भा० टी०—मूर्खता दुःख देती है और युवापन भी दुःख देता है, परन्तु दूसरेके गृहका वास तो बहुतही दुःखदायक होता है ॥ ८ ॥

शैलेशैलेनमाणिक्यंमौक्तिकंनगजेगजे ॥
साधवोनहिसर्वत्रचन्दनं न वनेवने ॥ ९ ॥

दोहा—शैल शैल माणिक नहीं, गज गज मुक्ता नाहिं ।
वन वनमें चन्दन नहीं, साधु न सब थल माहिं ॥ ९ ॥

भा० टी०—सब पर्वतोंपर माणिक्य नहीं होता और मोती सब हाथियोंमें नहीं मिलता, साधुलोग सब स्थानोंमें नहीं मिलते और सब वनमें चन्दन नहीं होता ॥ ९ ॥

पुत्राश्चविविधैः शीलैर्नियोज्याः सततंबुधैः ॥
नीतिज्ञाः शीलसंपन्नाभवंतिकुलपूजिताः ॥ १० ॥

दोहा—पुत्रहि शिखवै शीलको, बुधजन नानारीति ।
कुलमें पूजित होत है, शील सहित जो नीति ॥ १० ॥

भा० टी०—बुद्धिमान् लोग लडकोंको नानाभांतिकी सुशीलतामें लगावें इस कारण कि, नीतिके जाननेवाले यदि शीलवान् होयँ तो कुलमें पूजित होते हैं ॥ १० ॥

मातारिपुः पिताशत्रुर्बालोयाभ्यांनपाठ्यते ॥
सभामध्येनशोभेतहंसमध्येबकोयथा ॥ ११ ॥

दोहा–ते माता पितु शत्रुसम, सुत न पढावैं जान ।
राजहंसमधि बकसरिस, सभा न शोभित तौन ॥११॥

भा० टी०–वह माता शत्रु और पिता वैरी है, जिन्होंने अपने बालक न पढाये इस कारण कि सभाके बीच वे ऐसे नहीं शोभते जैसे हंसोंके बीच बगुला ॥ ११ ॥

लालनाद्बहवोदोषास्ताडनाद्बहवोगुणाः ॥
तस्मात्पुत्रंचशिष्यंचताडयेन्नतुलालयेत् ॥१२॥

दोहा–प्यार किये बहु दोष हैं, दंड किये बहु सार ।
पुत्र शिष्यहूको करै, ताते दंड विचार ॥ १२ ॥

भा० टी०–दुलारनेसे बहुत दोष होते हैं और दंड देनेसे बहुत गुण हैं इस हेतु पुत्र और शिष्यको दंड देना उचित है लालन नहीं ॥१२॥

श्लोकेनवातदर्द्धेनतदर्द्धार्द्धाक्षरेणवा ॥
अवन्ध्यंदिवसंकुर्याद्दानाध्ययनकर्मभिः ॥१३॥

दोहा–श्लोक एक वा आध वा, तासु आध तेहि आध ॥
दिन स्वारथ करि अक्षरै, पठन दान कृत साथ ॥ १३॥

भा० टी०–श्लोक वा श्लोकके आधेको अथवा आधेमेंसे आधेको प्रतिदिन पढना उचित है, इस कारण कि, दान अध्ययन आदि कर्मसे दिनको सार्थक करना चाहिये ॥ १३ ॥

कांतावियोगः स्वजनापमानो रणस्य शेषः कुनृपस्य सेवा ॥ दरिद्रभावोविषमासभा चविनाग्निनैतेप्रदहन्तिकायम् ॥ १४ ॥

दोहा—युद्धशेष प्यारी विरह, दरिद बन्धुअपमान ।
दुष्टराज खलकी सभा, दाहत विनाहि कृशान ॥ १४ ॥

भा० टी०—स्त्रीका विरह, अपने जनोंसे अनादर, युद्ध करके बचा शत्रु, दुष्ट राजाकी सेवा, दरिद्रता और दुष्टोंकी सभा ये बिना आगही शरीरको जलाते हैं ॥ १४ ॥

नदीतीरे च ये वृक्षाः परगेहेषु कामिनी ॥ मंत्रिहीनाश्चराजानः शीघ्रंनश्यंत्यसंशयम् १५॥

दोहा—नदीतीरको वृक्ष औ, राजा मन्त्रीहीन ।
नष्ट होय परघर तिया, अवाशि शीघ्रही तीन ॥ १५ ॥

भा० टी०—नदीके तीरके वृक्ष, दूसरेके गृहमें जानेवाली स्त्री, मन्त्री रहित राजा, निश्चय है कि ये तीनों शीघ्रही नष्ट होजाते हैं ॥ १५ ॥

बलंविद्याचविप्राणां राज्ञांसैन्यंबलंतथा ॥ बलंवित्तंचवैश्यानांशूद्राणांचकनिष्ठिका ॥१६॥

दोहा—विद्या बल है विप्रको, राजाको बल सैन ।
धन वैश्यन बल शूद्रको, सेवाही बल ऐन ॥ १६ ॥

भा० टी०—ब्राह्मणोंका बल विद्या है, वैसेही राजाका बल सेना, वैश्योंका बल धन और शूद्रोंका बल सेवा ॥ १६ ॥

निर्धनंपुरुषंवेश्याप्रजाभग्नंनृपंत्यजेत् ॥
खगावीतफलंवृक्षंभुक्त्वाअभ्यागतागृहम् ॥१७॥

दोहा-करि भोजन गृह अतिथिजन, प्रजा निबल नृप जानि ।
फल विहीन तरु खग तजहिं, वेश्या धन विनु मानि १७॥

भा० टी०-वेश्या निर्धनपुरुषको, प्रजा शक्तिहीन राजाको, पक्षी फलरहित वृक्षको और अभ्यागत भोजन करके घरको छोड देते हैं१७॥

गृहीत्वादक्षिणांविप्रास्त्यजंतियजमानकम् ॥
प्राप्तविद्यागुरुंशिष्यादग्धारण्यंमृगास्तथा १८ ॥

दोहा-यजमानहि द्विज दान लहि, गुरु शिष विद्या पाय ।
जरे वनहुको मृग तजहिं, नीति कहत अस गाय १८॥

भा० टी०-ब्राह्मण दक्षिणा लेकर यजमानको त्याग देते हैं शिष्य विद्या प्राप्त होनेपर गुरुको वैसेही जरेहुए वनको मृग छोड देते हैं॥१८॥

दुराचारीदुष्टदृष्टिर्दुरावासीचदुर्जनः ॥
यन्मैत्रीक्रियतेपुंसासतुशीघ्रंविनश्यति ॥ १९ ॥

दोहा-दुराचारि दुर दृष्टि हूं, दुर्जन दुस्थल वास ।
उनते जो संगति करै, तासु वेगही नास ॥ १९ ॥

भा० टी०-जिसका आचरण बुरा है, जिसकी दृष्टि पापमें रहती है बुरे स्थानमें बसनेवाला और दुर्जन इन पुरुषोंकी मैत्री जिसके साथ की जाती है वह शीघ्रही नष्ट होजाता है ॥ १९ ॥

समानेशोभतेप्रीतीराज्ञिसेवाचशोभते ॥
वाणिज्यंव्यवहारेषुस्त्रीदिव्याशोभतेगृहे ॥ २० ॥

दोहा–नृपमें सेवा सोहती, सोहाति प्रीति समान ।
बनिआई व्यवहारमें, गृहमें तिय गुणवान ॥ २० ॥

भा० टी०–समानमें प्रीति शोभती है और सेवा राजाकी शोभती है व्यवहारोंमें बनियाई और घरमें दिव्य सुन्दर स्त्री शोभती है ॥ २० ॥

इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ३.

कस्यदोषःकुलेनास्तिव्याधिना केन पीडिताः ॥
व्यसनं केन न प्राप्तकस्यसौख्यंनिरन्तरम् ॥ १ ॥

दोहा–केहिके कुलमें दोष नहिं, व्याधि न पीडित कौन ।
दुख पायो नहिं कौन वह, नित सुख काके भौन ॥ १ ॥

भा० टी०–किसके कुलमें दोष नहीं है ? व्याधिने किसे पीडित न किया ? किसको न दुःख मिला ? किसको सदा सुखही रहा ? ॥ १ ॥

आचारःकुलमाख्याति देशमाख्याति भाषणम् ॥
संभ्रमः स्नेहमाख्यातिवपुराख्यातिभोजनम् २ ॥

दोहा-आचारै कुल कहँ कहत, बोल कहत है देश ।
संभ्रम प्रीतिहि कहत है, तन भोजनहि हमेस ॥ २ ॥

भा० टी०-आचार कुलको बतलाता है, बोली देशको जनाती है, आदर प्रीतिका प्रकाश करती है, शरीर भोजनको जनाता है ॥२॥

सत्कुलेयोजयेत्कन्यांपुत्रंविद्यासुयोजयेत् ।
व्यसनेयोजयेच्छत्रुमिष्टंधर्मेणयोजयेत् ॥ ३ ॥

दोहा-कन्या सतकुल व्याहिये, विद्या सुतहिं पढाइ ।
शत्रुहि पीडै मित्र कहँ, दीजै धर्म लगाइ ॥ ३ ॥

भा० टी०-कन्याको श्रेष्ठ कुलवालेको देनी चाहिये, पुत्रको विद्यामें लगाना चाहिये, शत्रुको दुःख पहुँचाना उचित है और मित्रको धर्मका उपदेश करना चाहिये ॥ ३ ॥

दुर्जनस्य च सर्पस्य वरं सर्पो न दुर्जनः ॥
सर्पो दशति काले तु दुर्जनस्तु पदेपदे ॥ ४ ॥

दोहा-खलहु सर्प इन दुहुनमें, भला सर्प खल नाहिं ।
सर्प डसत है कालमें, खल जन पदपद माहिं ॥ ४ ॥

भा० टी०-दुर्जन और सर्प इनमें सांप अच्छा, दुर्जन नहीं, इस कारण कि, सांप काल आनेपर काटताहै, खल तो पदपदमें ॥ ४ ॥

एतदर्थंकुलीनानां नृपाः कुर्वन्तिसंग्रहम् ॥
आदिमध्यावसानेषुनत्यजंतिचतेनृपम् ॥ ५ ॥

दोहा–भूप कुलीननको करे, संग्रही याही हेत ।
आदि मध्य औ अंतमें, नृपहि न ते तजि देत ॥ ५ ॥

भा० टी०–राजालोग कुलीनोंका संग्रह इस निमित्त करते हैं कि ये आदि आर्थात् उन्नाति, मध्य अर्थात् साधारण और अन्त अर्थात् विपत्तिमें राजाको नहीं छोडते ॥ ५ ॥

प्रलयेभिन्नमर्यादाभवंतिकिलसागराः ॥
सागराभेदमिच्छन्तिप्रलयेपिनसाधवः ॥ ६ ॥

दोहा–मर्यादा सागर तजैं, प्रलय होनके काल ।
उत साधू छोडैं नहीं, सदा आपनी चाल ॥ ६ ॥

भा० टी०–समुद्र प्रलयके समयमें अपनी मर्यादाको छोड देते हैं और सागर भेदकी इच्छा भी रखते हैं, परन्तु साधु लोग प्रलय होनेपर भी अपनी मर्यादाको नहीं छोडते ॥ ६ ॥

मूर्खस्तु परिहर्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः ॥
भिनात्तिवाक्यशल्येन अदृशं कंटकोयथा ॥७॥

दोहा–मूरखको तजि दीजिये, प्रगट द्विपद पशु जान ।
वचन शल्यते वेधहीं, अंधहिं कांट समान ॥ ७ ॥

भा०टी०–मूर्खको दूर करना उचित है, इस कारण कि, देखनेमें वह मनुष्य है, परंतु यथार्थ देखे तो दो पांवका पशु है, और वाक्य-रूप शल्यसे वेधता है जैसे अन्धेको कांटा ॥ ७ ॥

रूपयौवनसम्पन्नाविशालकुलसम्भवाः ॥
विद्याहीनानशोभन्तेनिर्गन्धाइवकिंशुकाः ॥ ८॥

सोरठा–विद्या विन कुलमान, यदपि रूपयौवन सहित ।
सुमन पलाश समान, सोह न सौरभके विना ॥ ८ ॥

भा०टी०–सुन्दरता, तरुणता और बडे कुलमें जन्म इनके रहतेभी विद्याहीन पुरुष विना गन्ध पलाश (ढाक) के फूलके समान नहीं शोभते ॥ ८ ॥

कोकिलानांस्वरोरूपं स्त्रीणां रूपं पतिव्रतम् ॥
विद्यारूपंकुरूपाणांक्षमारूपंतपस्विनाम् ॥ ९॥

दोहा–रूप कोकिलन स्वर तियन, पतिव्रत रूप अनूप ।
विद्यारूप कुरूपको, क्षमा तपस्विन रूप ॥ ९ ॥

भा०टी०–कोकिलोंकी शोभा स्वर है, स्त्रियोंकी शोभा पातिव्रत्य, कुरूपोंकी शोभा विद्या है, तपस्वियोंकी शोभा क्षमा है ॥ ९ ॥

त्यजेदेकंकुलस्यार्थेग्रामस्यार्थेकुलंत्यजेत् ॥
ग्रामंजनपदस्यार्थेआत्मार्थेपृथिवींत्यजेत्॥ १०॥

दोहा–एक तजै कुलअर्थ लगि, ग्राम कुलहुको अर्थ ।
तजै ग्राम देशार्थ लगि, देशौ आतम अर्थ ॥ १० ॥

भा०टी०–कुलके निमित्त एकको छोडदेना चाहिये ग्रामके हेतु कुलका त्याग उचित है, देशके अर्थ ग्रामका और अपने अर्थ पृथिवीका अर्थात् सबका त्याग ही उचित है ॥ १० ॥

उद्योगेनास्तिदारिद्र्यंजपतोनास्तिपातकम् ॥
मौनेचकलहोनास्तिनास्तिजागरितेभयम् ११ ॥

दोहा—नहिं दरिद्र उद्योगपर, जपते पातक नाहिं ।
कलह रहै नहिं मौनमें, नहिं भय जागत माहिं ॥ ११ ॥

भा०टी०—उपाय करनेपर दरिद्रता नहीं रहती, जपनेवालोंको पाप नहीं रहता, मौन होनेसे कलह नहीं होता और जागनेवालेके निकट भय नहीं आता ॥ ११ ॥

अतिरूपेणवैसीताअतिगर्वेणरावणः ॥
अतिदानाद्बलिर्बद्धोह्यतिसर्वत्रवर्जयेत् ॥ १२ ॥

दोहा—अतिछबि सीताहरण भो, नाशि रावण अति गर्व ।
अतिहि दानते बलि बँधे, अति तजिये थल सर्व ॥१२॥

भा०टी०—अतिसुन्दरताके कारण सीता हरी गई, अतिगर्वसे रावण मारा गया, बहुत दान देकर बलिको बँधना पडा, इस हेतु अतिको सब स्थलमें छोडदेना चाहिये ॥ १२ ॥

कोहिभारः समर्थानां किंदूरं व्यवसायिनाम् ॥
कोविदेशः सुविद्यानांकोऽप्रियःप्रियवादिनाम् १३

दोहा—उद्योगहि कछु दूर नाहिं, बलिहि न भार विशेष ।
प्रियवादिन अप्रिय नाहिं, बुधहि न कठिन विदेश ॥१३ ॥

भा०टी०-समर्थको कौन वस्तु भारी है, काममें तत्पर रहनेवालेको क्या दूर है, सुन्दर विद्यावालोंको कौन विदेश है, प्रियवादियोंको अप्रिय कौन है ॥ १३ ॥

एकेनापिसुवृक्षेणपुष्पितेनसुगन्धिना ॥
वासितंतद्वनंसर्वंसुपुत्रेणकुलं यथा ॥ १४ ॥

दोहा-एक सुगंधित वृक्षसे, सब वन होत सुवास ।
जैसे कुल शोभित अहै, सहि सुपुत्र गुणरास ॥ १४ ॥

भा०टी०-एक भी अच्छे वृक्षसे जिसमें सुन्दर फूल और गन्ध है उससे सब वन सुवासित होजाता है जैसे सुपुत्रसे कुल ॥ १४ ॥

एकेनशुष्कवृक्षेणदह्यमानेनवह्निना ॥
दह्यतेतद्वनंसर्वं कुपुत्रेणकुलंतथा ॥ १५ ॥

दोहा-सूख जरत इक तरुहिते, जस लागत वन डाह ।
कुलको दाहक होतहै, तस कुपूतकी बाढ ॥ १५ ॥

भा०टी०-आगसे जरते हुए एकही सूखे वृक्षसे वह सब वन ऐसे जरजाता है जैसे कुपुत्रसे कुल ॥ १५ ॥

एकेनापिसुपुत्रेणविद्यायुक्तेनसाधुना ॥
आह्लादितंकुलंसर्वंयथाचन्द्रेणशर्वरी ॥ १६ ॥

सोरठा-एकहु सुत जो होय, विद्यायुत औ साधुचित ।
आनंदित कुल सोय, यथा चंद्रमासे निशा ॥ १६ ॥

भा० टी०-विद्यायुक्त भले एक भी सुपुत्रसे सब कुल ऐसे आनंदित होजाता है जैसे चन्द्रमासे रात्रि ॥ १६ ॥

किंजातैर्बहुभिः पुत्रैः शोकसन्तापकारकैः ॥
वरमेकः कुलालम्बी यत्रविश्राम्यतेकुलम् १७ ॥

दोहा-करनहार सन्ताप सुत, जनमें कहा अनेक ।
देइ कुलहि विश्राम जो, श्रेष्ठ होय बरु एक ॥ १७ ॥

भा०टी०-शोक सन्ताप करनेवाले उत्पन्न बहुपुत्रोंसे क्या, कुलको सहारा देनेवाला एकही पुत्र श्रेष्ठ है जिसमें कुल विश्राम पाता है ॥ १७ ॥

लालयेत्पञ्चवर्षाणिदशवर्षाणिताडयेत् ॥
प्राप्तेतुषोडशेवर्षे पुत्रेमित्रत्वमाचरेत् ॥ १८ ॥

दोहा-पंचवर्षलौ लालिये, दशलौं ताडन देइ ॥
सुतहि सोलवें वर्षमें, मित्र सरिस गनि लेइ ॥ १८ ॥

भा०टी०-पुत्रको पांच वर्षतक दुलरावे, उपरांत दस वर्षपर्यंत ताडन करे, सोलहवें वर्षकी प्राप्ति होनेपर पुत्रमें मित्रसमान आचरण करे१८॥

उपसर्गेऽन्यचक्रे च दुर्भिक्षे च भयावहे ॥
असाधुजनसंपर्के यः पलायति जीवति ॥ १९ ॥

दोहा-काल उपद्रव संग शठ, अन्न राज भय होय ।
तेहि थलेत जो भागिहै, जीवत बचिहै सोय ॥ १९ ॥

भा० टी०–उपद्रव उठनेपर, शत्रुके आक्रमण करनेपर, भयानक अकाल पडनेपर और खलजनके संग होनेपर जो भागता है वह जीवता रहता है ॥ १९ ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु यस्यैकोऽपिनविद्यते ॥
फलजन्महिमर्त्येषुमरणंतस्यकेवलम् ॥ २० ॥

दोहा–धर्म अर्थ कामादिमें, अहै न एको जाय ।
जन्म भयेको फल मिल्यो, केवल मरणहि ताहि ॥२०॥

भा०टी०–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनमेंसे जिसको कोई भी ना भया उसको मनुष्योंमें जन्म होनेका फल केवल मरणही हुआ ॥२०॥

मूर्खायत्रनपूज्यंतेधान्यंयत्रसुसंचितम् ॥
दांपत्यकलहोनास्तितत्रश्रीःस्वयमागता॥२१ ॥

दोहा–जहां अन्न संचित रहे, मूर्ख मान नहिं पाव ।
दंपतिमें जहँ कलह नहिं, संपति आपुइ आव ॥ २१ ॥

भा०टी०–जहां मूर्ख नहीं पूजे जाते जहां अन्न संचित और जहां स्त्रीपुरुषमें कलह नहीं होता वहां आपही लक्ष्मी विराजमान रहती है २१

इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ४.

आयुः कर्म च वित्तं च विद्यानिधनमेवच ॥
पञ्चैतानिहिसृज्यन्ते गर्भस्थस्यैवदेहिनः ॥ १ ॥

सोराठा–आयुर्बल और कर्म, धन विद्या अरु मरण ये ।
नीति कहत अस मर्म, गर्भहिमें लिखि जात हैं ॥ १॥

भा०टी०–यह निश्चय है कि, आयुर्दाय, कर्म, धन, विद्या और मरण ये पांचों जब जीव गर्भहीमें रहताहै तबही लिख दिये जातेहैं।१॥

साधुभ्यस्तेनिवर्ततेपुत्रामित्राणिबांधवाः ॥
येचतैः सहगन्तारस्तद्धर्मात्सुकृतंकुलम् ॥ २ ॥

दोहा–बांधव जन सुत मित्र वे, रहत साधु प्रतिकूल ।
ताहि धर्म कुल सुकृत लहु, जो इनके अनुकूल ॥ २ ॥

भा०टी०–पुत्र, मित्र, बन्धु ये साधुजनोंसे निवृत्त होजाते हैं और जो उनका संग करते हैं उनके पुण्यसे उनका कुल सुकृती होजाताहै ॥ २ ॥

दर्शनध्यानसंस्पर्शैर्मत्सीकूर्मीचपक्षिणी ॥
शिशुंपालयतेनित्यंतथासज्जनसंगतिः ॥३॥

दोहा–मच्छी, पंछी, कच्छपी, दरस परस करि ध्यान ।
शिशु पालै नित तैसही, सज्जन संग प्रमान ॥ ३ ॥

भा०टी०–मछली कछुई और पक्षी ये दर्शन, ध्यान और स्पर्शसे जैसे बच्चोंको सर्वदा पालती हैं वैसेही सज्जनोंकी संगति ॥ ३ ॥

यावत्स्वस्थोह्ययंदेहोयावन्मृत्युश्चदूरतः ॥
तावदात्महितंकुर्यात्प्राणांतेकिंकरिष्यति ॥ ४॥

दोहा–जौलों देह समर्थ है, जबलौं मरिवो दूरि ।
तौलौं आतम हित करै, प्राण अंत सब पूरि ॥ ४ ॥

भा०टी०–जबलग देह नीरोग है और जबलग मृत्यु दूर है तत्पर्यन्त अपना हित पुण्यादि करना उचित है, प्राणके अन्त होजानेपर कोई क्या करेगा ॥ ४ ॥

कामधेनुगुणाविद्याह्यकालेफलदायिनी ॥
प्रवासेमातृसदृशीविद्यागुप्तंधनंस्मृतम् ॥ ५ ॥

दोहा–विन औसरहू देत फल, कामधेनुसम नित्त ।
मातासी पर देशमें, विद्या संचित वित्त ॥ ५ ॥

भा० टी०–विद्यामें कामधेनुके समान गुणहैं इस कारण कि अकालमें फल देतीहै, विदेशमें माताके समान है, विद्याको गुप्त धन कहतेहैं ॥ ५ ॥

एकोपिगुणवान्पुत्रोनिर्गुणैश्चशतैर्वरः ॥
एकश्चन्द्रस्तमोहंति नच ताराः सहस्रशः ॥ ६ ॥

दोहा–सौ निर्गुनियनसे अधिक, एक पुत्र सुविचार ।
एक चन्द्र तमको हरै, तारा नहीं हजार ॥ ६ ॥

भा०टी०–एक भी गुणी पुत्र सैकडों गुणरहितोंसे श्रेष्ठ है जैसे एक ही चन्द्र अन्धकारको नष्ट करदेता है, सहस्र तारे नहीं ॥ ६ ॥

मुर्खश्चिरायुर्जातोऽपितस्माज्जातमृतोवरः ॥
मृतस्तुचाल्पदुःखाययावज्जीवंजडोदहेत् ॥ ७ ॥

दोहा–मूर्ख चिरायुनसे भलो, जन्मतही मरि जाय ।
मरे अल्प दुख होइहै, जिये सदा दुखदाय ॥ ७ ॥

भा० टी०–मूर्ख जन्मा चिरंजीवी भी हो उससे उत्पन्न होतेही जो मरगया वह श्रेष्ठ है। इस कारण कि, मरा थोडेही दुःखका कारण होताहै, जड जबलों जीता है तबलों दाहता है ॥ ७ ॥

कुग्रामवासःकुलहीनसेवा कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या ॥ पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कन्या विनाग्निना षट्र प्रदहंति कायम् ॥ ८ ॥

दोहा–घर कुगांव सुत मूढ तिय, खल नीचनि सेवकाय ।
कुभख सुता विधवा छवों, तन बिनु अग्नि जराय ॥८॥

भा० टी०–कुग्राममें वास, नीच कुलकी सेवा, कुभोजन, कलही स्त्री, मूर्खपुत्र, विधवा कन्या ये छः विना आगही शरीरको जलातेहैं ॥८॥

**किंतयाक्रियतेधेन्वायानदोग्ध्रीनगुर्विणी ।
कोर्थः पुत्रेणजातेनयोनविद्वान्न भक्तिमान् ॥९॥**

दोहा–कहा होय तेहि धेनु जो, दूध न गाभिन होय ।
कौन अर्थ वहि सुत भये, पण्डित भक्त न जोय ॥ ९ ॥

भा० टी०–उस गायसे क्या लाभहै जो न दूध देवे, न गाभिन होवे और ऐसे पुत्र हुएसे क्या लाभ जो न विद्वान् भया न भक्तिमान् ॥९॥

संसारतापदग्धानांत्रयोविश्रांतिहेतवः ॥
अपत्यंचकलत्रंचसतांसंगतिरेवच ॥ १० ॥

दोहा–यह तीनै विश्राम, माहिं तपन जगतापमें ।
हरै घोर भव धाम, पुत्र नारि सतसंग पुनि ॥ १०॥

भा०टी०–संसारके तापसे जलते हुए पुरुषोंके विश्रामके हेतु तीन है लडका, स्त्री और सज्जनोंकी संगति ॥ १० ॥

सकृज्जल्पन्तिराजानः सकृज्जल्पन्तिपण्डिताः ॥
सकृत्कन्याः प्रदीयन्तेत्रीण्येतानिसकृत्सकृत् ११

दोहा–भूपति औ पंडित वचन, औ कन्याको दान ।
एकै एकै बार ये, तीनों होत समान ॥ ११ ॥

भा० टी०–राजा लोग एकहीवार आज्ञा देते हैं पंडितलोग एकही बार बोलते हैं, कन्याका दान एकहीबार होता है, ये तीनों बातें एकहीबार होती हैं ॥ ११ ॥

एकाकिनातपोद्वाभ्यांपठनंगायनंत्रिभिः ॥
चतुर्भिर्गमनंक्षेत्रंपञ्चभिर्बहुभीरणम् ॥ १२ ॥

दोहा–तप एकहि द्वैसे पठन, गान तीनि पथ चारि ।
कृषी पांच रण बहुत मिलि, अस कह शास्त्र विचारि १२

भा० टी०–अकेलेसे तप, दोसे पढना; तीनसे गाना, चारसे पंथमें चलना, पांचसे खेती और बहुतोंसे युद्ध भलीभांतिसे बनते हैं ॥ १२ ॥

साभार्यायाशुचिर्दक्षासाभार्यायापतिव्रता ॥
साभार्यायापतिप्रीतासाभार्यासत्यवादिनी १३ ॥

दोहा–सत्य मधुरभाषै वचन, और चतुर शुचि होय ।
पति प्यारी औ पतिव्रता, तिया जानिये सोय ॥१३॥

भा०टी०–वही भार्या है जो पवित्र और चतुर है, वही भार्या है जो पतिव्रता है, वही भार्या है जिसपर पतिकी प्रीति है, वही भार्या है जो सत्य बोलती है अर्थात् दान मान पोषण पालनके योग्य वही है ॥१३॥

अपुत्रस्यगृहंशून्यं दिशः शून्यास्त्वबांधवाः ॥
मूर्खस्यहृदयंशून्यंसर्वशून्यादरिद्रता ॥ १४ ॥

दोहा–है अपुत्रका सून घर, बांधव विन दिशि सून ।
मूरखको हिय सून है, दारिदको सब सून ॥ १४ ॥

भा० टी०–निपुत्रीका घर सूना है, बन्धुरहितकी दिशा शून्य है, मूर्खका हृदय शून्य है और सर्वशून्य दरिद्रता है ॥ १४ ॥

अनभ्यासेविषंशास्त्रमजीर्णेभोजनंविषम् ॥
दरिद्रस्यविषंगोष्ठीवृद्धस्यतरुणीविषम् ॥ १५॥

दोहा–भोजन विष है विनु पचे, शास्त्र विना अभ्यास ।
सभा गरलसम रंककी, बूढहि तरुनी पास ॥ १५ ॥

भा०टी०–विना अभ्यासके शास्त्र विष होजाता है, विना पचे भोजन विष होजाताहै, दरिद्रोकी गोष्ठी विष और वृद्धको युवती विष जानपडती है ॥ १५ ॥

त्यजेद्धर्मं दयाहीनं विद्याहीनं गुरुं त्यजेत् ॥
त्यजेत्क्रोधमुखीभार्यां निःस्नेहान्बांधवांस्त्यजेत्

दोहा—दया रहित धर्महि तजै, औ गुरु विद्या हीन।
क्रोधमुखी तिय प्रीतिबिनु, बान्धव तजै प्रवीन ॥१६॥

भा॰टी—दयारहित धर्मको छोडदेना, चाहिये, विद्याहीन गुरुका त्याग उचित है जिसके मुँहसे क्रोध प्रकट होता हो ऐसी भार्याको अलग करना चाहिये और विनाप्रीति बाँधवोंका त्याग विहित है ॥१६॥

अध्वाजरामनुष्याणांवाजिनांबन्धनंजरा ॥
अमैथुनंजरास्त्रीणांवस्त्राणामातपोजरा ॥ १७॥

दोहा—पंथ बुढाई नरनकी, हयन बंध इक थाम।
जरा अमैथुन तियन कहँ, औ वस्त्रनको घाम ॥ १७ ॥

भा॰टी॰—मनुष्योंको बूढापन पंथ है, घोडेको बांधरखना वृद्धता है, स्त्रियोंको अमैथुन बूढापन है, और वस्त्रोंको घाम वृद्धता है ॥१७॥

कः कालः कानिमित्राणिकोदेशःकौव्ययागमौ ॥
कस्याहंकाचमेशक्तिरितिचिंत्यंमुहुर्मुहुः ॥१८॥

दोहा—हौं केहिको का शक्ति मम, कौन काल अरु देश।
लाभखर्च का मित्र को, चिंता करै हमेश ॥ १८ ॥

भा॰ टी॰—किस कालमें क्या करना चाहिये, मित्र कौन है, देश कौन है, लाभ व्यय क्या है, किसका मैं हूँ मुझमें क्या शक्ति है ये सब बारबार विचारना योग्य है ॥ १८ ॥

अग्निर्देवोद्विजातीनांमुनीनांहृदिदैवतम् ॥
प्रतिमास्वल्पबुद्धीनांसर्वत्रसमदर्शिनाम् ॥१९॥

दोहा–ब्राह्मण क्षत्री वैश्यको, अग्नि देवता और ।
मुनिजन हिय मूरति अबुध, समदर्शिन सब ठौर॥१९॥

भा० टी०–ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य इनको देवता अग्नि है, मुनियोंके हृदयमें देवता रहती है. अल्पबुद्धियोंको मूर्तिमें और समदर्शियोंके सब स्थानमें देवता है ॥ १९ ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ५.

पतिरेवगुरुः स्त्रीणांसर्वस्याभ्यागतोगुरुः ॥
गुरुरग्निर्द्विजातीनांवर्णानांब्राह्मणोगुरुः ॥ १ ॥

दोहा–अभ्यागत सबको गुरू, नारी गुरु पति जान ।
द्विजन अग्निगुरु चारिहू, वरन विप्र गुरु मान ॥ १ ॥

भा०टी०–स्त्रियोंका गुरु पतिही है, अभ्यागत सबका गुरु है ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इनका गुरु अग्नि है और चारों वर्णोंका गुरु ब्राह्मण है।१॥

यथाचतुर्भिः कनकंपरीक्ष्यतेनिघर्षणच्छेदन तापताडनैः ॥ तथाचतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ॥ २ ॥

दोहा-जिमि तपाय घसि काटि पिटि,सुवरन लख,विधि चारि।
त्याग शील गुण कर्म तिमि, चारिहि पुरुष विचारि २॥
भा०टी०-घिसना, काटना, तपाना, पीटना, इन चार प्रकारोंसे जैसे सोनेकी परीक्षा की जाती है वैसेही दान, शील, गुण और आचार इन चारों प्रकारोंसे पुरुषकीभी परीक्षा की जाती है ॥ २ ॥

तावद्भयेषुभेतव्यंयावद्भयमनागतम् ॥
आगतंतुभयंदृष्ट्वाप्रहर्तव्यमशंकया ॥ ३ ॥

दोहा-जौलौं भय आवै नहीं, तौलों डरे विचार ।
आये शंका छोडिकै, चलिये कीन्ह प्रहार ॥ ३ ॥
भा०टी०-तबतकही भयोंसे डरना चाहिये, जबतक, नहीं आवै और आये हुए भयोंको देखकर प्रहार करना उचित है ॥ ३ ॥

एकोदरसमुद्भूताएकनक्षत्रजातकाः ॥
नभवंतिसमाःशीलैर्यथाबदरिकण्टकाः ॥ ४ ॥

दोहा-एकही गर्भ नक्षत्रमें, जायमान यदि होय ।
नहीं शील सम होतहै, बेरकांट सम दोय ॥ ४ ॥
भा० टी०-एकही गर्भसे उत्पन्न और एकही नक्षत्रमें जायमान शीलमें समान नहीं होते जैसे बेर और उसके कांटे ॥ ४ ॥

निःस्पृहोनाधिकारीस्यान्नाकामीमंडनप्रियः ॥
नाविदग्धःप्रियं ब्रूयात्स्पष्टवक्तानवंचकः ॥ ५ ॥

दोहा—नाहिं निस्पृह अधिकार गहु, नाहिं भूषण निहकाम ।
नहिं अचतुर प्रिय बोलु नहिं, वंचक साफकलाम ॥ ५ ॥

भा० टी०–जिसको किसी विषयकी वांछा न होगी वह किसी विषयका अधिकार नहीं लेगा, जो कामी न होगा वह शरीरकी शोभा करनेवाली वस्तुओंमें प्रीति नहीं रक्खेगा, जो चतुर न होगा वह प्रिय नहीं बोल सकेगा और स्पष्ट कहनेवाला छली नहीं होगा ॥ ५ ॥

मूर्खाणांपंडिताद्वेष्याअधनानांमहाधनाः ॥
दुर्भगाणांचसुभगाः कुलटानांकुलांगनाः ॥ ६ ॥

दोहा—मूरख द्वेषी पंडितहि, धनहीनहि धनवान ।
परकीया स्वकियाहुकी, विधवा सुभागा जान ॥ ६ ॥

भा० टी०–मूर्ख पंडितोंसे, दरिद्री धनियोंसे, व्यभिचारिणी कुल-स्त्रियोंसे और विधवा सुहागिनियोंसें बुरा मानती है ॥ ६ ॥

आलस्योपहताविद्यापरहस्तगतंधनम् ॥
अल्पबीजंहतंक्षेत्रंहतंसैन्यमनायकम् ॥ ७ ॥

दोहा—आलसते विद्या नशै, धन औरनके हाथ ।
अल्पबीजसे खेत अरु, दल दलपति बिनु साथ ॥ ७ ॥

भा० टी०–आलस्यसे विद्या, दूसरेके हाथमें, जानेसे धन, बीजकी यूनतासे खेत और सेनापातिके बिना सेना नष्ट होजाती है ॥ ७ ॥

अभ्यासाद्धार्यतेविद्याकुलंशीलेनधार्यते ॥
गुणेनज्ञायतेत्वार्यः कोपोनेत्रेणगम्यते ॥ ८ ॥

दोहा-कुल शीलहिते धारिये, विद्या करि अभ्यास ।
गुणते जानहि श्रेष्ठ कहँ, नयनहिं कोपनिवास ॥ ८ ॥

भा० टी०-अभ्याससे विद्या, सुशीलतासे कुल, गुणसे भला मनुष्य और नेत्रसे कोप ज्ञात होता है ॥ ८ ॥

वित्तेनरक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ॥
मृदुना रक्ष्यते भूपः सत्स्त्रिया रक्ष्यतेगृहम् ॥९॥

दोहा-विद्या रक्षित योगते, मृदुतासे भूपाल ।
रक्षित गेह सुतीयते, धनते धरम विशाल ॥ ९ ॥

भा० टी०-धनसे धर्मकी, यम नियम आदि योगसे ज्ञानकी, मृदुतासे राजाकी, भली स्त्रीसे घरकी रक्षा होती है ॥ ९ ॥

अन्यथावेदपाण्डित्यंशास्त्रमाचारमन्यथा ॥
अन्यथायद्वदच्छांतंलोकाःक्लिश्यन्तिचान्यथा१०

दोहा-वेद शास्त्र आचार औ, शान्तहि और प्रकार ।
जो कहते लहते वृथा, लोग कलेश अपार ॥ १० ॥

भा० टी०–वेदके पांडित्यको व्यर्थ प्रकाश करनेवाला शास्त्र और उस आचारके विषयमें व्यर्थ विवाद करनेवाला, शांत पुरुषको अन्यथा कहनेवाला ये लोग व्यर्थही क्लेश उठाते हैं ॥ १० ॥

दारिद्र्यनाशनंदानंशीलंदुर्गतिनाशनम् ॥
अज्ञाननाशिनीप्रज्ञाभावनाभयनाशिनी ॥११॥

सोरठा–दारिद नाशै दान, शील दुर्गतिहि नाशियंत ।
बुद्धि नाश अज्ञान, भय नाशत है भावना ॥ ११ ॥

भा० टी०–दान दरिद्रताका, सुशीलता दुर्गतिका, बुद्धि अज्ञानका और भक्ति भयका नाश करती है ॥ ११ ॥

नास्तिकामसमोव्याधिर्नास्तिमोहसमोरिपुः ॥
नास्तिकोपसमोवह्निर्नास्तिज्ञानात्परंसुखम् १२

सो०–व्याधि न कोपसों आन, रिपु नहिं दूजो मोहसम ।
अग्नि न काम समान, नहीं ज्ञानसे सुख परै ॥ १२ ॥

भा० टी०–कामके समान दुसरी व्याधि नहीं है, अज्ञानके समान दुसरा वैरी नहीं है, क्रोधके तुल्य दुसरी आग नहीं है, ज्ञानके तुल्य अन्य सुख नहीं है ॥ १२ ॥

जन्ममृत्यूहियात्येकोभुनक्त्येकःशुभाशुभम् ॥
नरकेषुपतत्येकएकोयातिपरांगतिम् ॥ १३ ॥

सोरठा-जन्म मृत्यु लहु एक, भोगत है इक शुभ अशुभ।
नरक जात है एक, लहत एकही मुक्तिपद॥ १३ ॥

भा० टी०-यह निश्चय है कि,एकही पुरुष जन्म मरण पाता है, सुख दुःख एकही भोगताहै, एकही नरकोंमें पडता है और एकही मोक्ष पाता है, अर्थात् इन कामोंमें कोई किसीकी सहायता नहीं कर सकता ॥ १३ ॥

तृणंब्रह्मविदः स्वर्गस्तृणंशूरस्यजीवितम् ॥
जिताशस्यतृणंनारीनिस्पृहस्यतृणंजगत्॥ १४॥

दोहा-ब्रह्मज्ञानिहि स्वर्ग तृण, जितइन्द्रिय तृण नार।
शूरहि तृण है जीवनो, निस्पृह कहँ संसार ॥ १४ ॥

भा० टी०-ब्रह्मज्ञानीको स्वर्ग तृण है, शूरको जीवन तृण है, जिसने इन्द्रियोंको वश किया उसे स्त्री तृणके तुल्य जानपडती है, निःस्पृहको जगत् तृण है॥ १४ ॥

विद्यामित्रंप्रवासेषुभार्यामित्रं गृहेषु च ॥
व्याधितस्यौषधंमित्रंधर्मोमित्रंमृतस्यच ॥ १५॥

दोहा-विद्या मित्र विदेशमें, घर तिय मीत सप्रीत।
रोगहि औषध अरु मरे, धर्म होत है मीत ॥ १५ ॥

भा० टी०-विदेशमें विद्या मित्र होती है, गृहमें भार्या मित्र है, रोगीका मित्र औषध है और मरेका मित्र धर्म है ॥ १५ ॥

वृथावृष्टिःसमुद्रेषु वृथातृप्तेषुभोजनम् ॥
वृथादानंधनाढ्येषुवृथादीपोदिवापिच ॥ १६ ॥

दोहा–व्यर्थै वृष्टि समुद्रमें, तृप्तहि भोजन दान ।
धनिकहि देनो व्यर्थ है, व्यर्थ दीप दिनमान ॥ १६ ॥

भा० टी०–समुद्रमें वर्षा वृथा है और भोजनसे तृप्तको भोजन निरर्थक है, धनीको धन देना व्यर्थ है और दिनमें दीपक व्यर्थ है १६॥

नास्तिमेघसमंतोयंनास्तिचात्मसमंबलम् ॥
नास्तिचक्षुःसमंतेजोनास्तिचान्नसमंप्रियम्।१७।

दोहा–दूजो जल नहिं मेघसम, बल आतमहि समान ।
नहिं प्रकाश है नैनसम, प्रिय अनाज सम आन ॥१७॥

भा० टी०–मेघके जलके समान दूसरा जल नहीं होता, अपने बल समान दूसरेका बल नहीं, इस कारण कि, समय पर काम आता है नेत्रके तुल्य दूसरा प्रकाश करनेवाला नहीं है और अन्नके सदृश दूसरा प्रिय पदार्थ नहीं है ॥ १७ ॥

अधनाधनमिच्छन्तिवाचंचैवचतुष्पदाः ॥
मानवाःस्वर्गमिच्छंतिमोक्षमिच्छंतिदेवताः।१८।

दोहा–अधनी धनको चाहते, पशू होन वाचाल ।
नर चाहते हैं स्वर्गको सुरगण मुक्तिविशाल ॥ १८ ॥

भा० टी०-धनहीन धन चाहते हैं और पशु वचन, मनुष्य स्वर्ग चाहते हैं और देवता मुक्तिकी इच्छा रखते हैं ॥ १८ ॥

सत्येनधार्यतेपृथ्वीसत्येनतपतेरविः ॥
सत्येनवातिवायुश्चसर्वंसत्येप्रतिष्ठितम् ॥ १९ ॥

दोहा-सत्यहिते रवि तपत है, सत्यहि पर भुवभार ।
बहै पवनहू सत्यसे, सत्यहि सब आधार ॥ १९ ॥

भा० टी०-सत्यसे पृथ्वी स्थिर है और सत्यसेही सूर्य तपते हैं, सत्यहीसे वायु बहती है, सब सत्यहीसे स्थिर है ॥ १९ ॥

चलालक्ष्मीश्चलाःप्राणाश्चलेजीवितमंदिरे ॥
चलाचलेचसंसारेधर्मएकोहिनिश्चलः ॥ २० ॥

दोहा-चल लक्ष्मी औ प्राणहु, और जीविका धाम ।
येह चलाचल जगतमें, अचल धर्म अभिराम ॥ २० ॥

भा० टी०-लक्ष्मी नित्य नहीं है, प्राण, जीवन, धाम ये सब स्थिर नहीं हैं । निश्चय है कि, इस चराचर संसारमें केवल धर्मही निश्चल है ॥ २० ॥

नराणांनापितोधूर्तःपक्षिणांचैववायसः ॥
चतुष्पदांशृगालस्तुस्त्रीणांधूर्ताचमालिनी ॥२१॥

दोहा–नरमें नाई धूर्त है, वायस पाक्षिन माहिं ।
चौपायनमें स्यार है, मालिनि नारि लखाहिं ॥ २१ ॥

भा० टी०–पुरुषोंमें नापित और पक्षियोंमें कौवा वञ्चक होताहै पशुओंमें सियार वञ्चक होताहै और स्त्रियोंमें मालिन धूर्त होतीहै २१

जानिताचोपनेताचयस्तुविद्यांप्रयच्छाति ॥
अन्नदाताभयत्रातापंचैते पितरः स्मृताः ॥२२॥

दोहा–पितु आचारज अन्नप्रद, भयरक्षक जो कोय ।
विद्यादाता पांच यह, मनुज पिता सम होय ॥ २२ ॥

भा० टी०–जन्मानेवाला, यज्ञोपवीत आदि संस्कार करानेवाला, जो विद्या देता है, अन्न देनेवाला, भयसे बचानेवाला ये पांच पिता गिने जाते हैं ॥ २२ ॥

राजपत्नी गुरोः पत्नी मित्रपत्नी तथैव च ॥
पत्नीमातास्वमाताचपञ्चैतामातरःस्मृताः ॥२३

दोहा–राजतिया औ गुरुतिया, मित्रतियाहू जान ।
निजमाता औ सासु ये, पांचों मातु समान ॥ २३ ॥

भा० टी०–राजाकी भार्या, गुरुकी स्त्री, ऐसेही मित्रकी पत्नी सास और अपनी जननी इन पांचोंको माता कहते हैं ॥ २३ ॥

इति पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ६.

श्रुत्वाधर्मंविजानातिश्रुत्वात्यजतिदुर्मतिम् ।
श्रुत्वाज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वामोक्षमवाप्नुयात् ॥ १ ॥

दोहा–सुनिके जानै धर्मको, सुनि दुर्बुधि तजि देत ।
सुनिकै पावै ज्ञानहू, सुनै मोक्षपद लेत ॥ १ ॥

भा० टी०–मनुष्य शास्त्रको सुनि कर धर्मको जानता है. दुर्बुद्धिको छोडता है, ज्ञान पाता है तथा मोक्ष पाता है ॥ १ ॥

काकः पक्षिषुचाण्डालः पशूनांचैवकुक्कुरः ॥
पापोमुनीनांचांडालः सर्वेषां चैवानिंदकः ॥ २ ॥

दोहा–वायस पक्षिन पशुन महँ, श्वान अहे चण्डाल ।
मुनियनमें जोहि पाप उर, सबमें निंदक काल ॥ २ ॥

भा० टी०–पक्षियोंमें कौवा और पशुओंमें कुक्कुर चांडाल होता है, मुनियोंमें चांडाल पाप है, और सबमें चांडाल निंदक है ॥ २ ॥

भस्मनाशुध्यतेकांस्यंताम्रमम्लेनशुध्यति ॥
रजसाशुध्यतेनारीनदीवेगेनशुध्यति ॥ ३ ॥

दोहा–कांस होत शुचि भस्मसे, ताम्र खटाई धोइ ।
रजोधर्मते नारि शुचि, नदी वेगसे होइ ॥ ३ ॥

भा० टी०–कांसेका पात्र राखसे, तांबेका अम्ल (खटाई) से स्त्री रजस्वला होनेपर और नदी धाराके वेगसे पवित्र होती है ॥ ३ ॥

भ्रमन्सम्पूज्यतेराजाभ्रमन्सम्पूज्यतेद्विजः ॥
भ्रमन्सम्पूज्यतेयोगीस्त्रीभ्रमन्तीविनश्यति ॥ ४ ॥

दोहा–पूजि जात है भ्रमनसे, द्विज योगी औ भूप ।
भ्रमन किये नारी नशै, ऐसी नीति अनूप ॥ ४ ॥

भा० टी०–भ्रमण करनेवाले राजा, ब्राह्मण, योगी पूजित होते हैं परन्तु स्त्री घूमनेसे नष्ट होजाती है ॥ ४ ॥

यस्यार्थास्तस्यमित्राणियस्यार्थास्तस्यबांधवाः ।
यस्यार्थाःसपुमाँल्लोकेयस्यार्थःसचपंडितः ॥५॥

दोहा–मित्र और हैं बंधु तेहि, सोइ पुरुष गणजात ।
धन है जाके पासमें, पांडित सोइ कहात ॥ ५ ॥

भा० टी०–जिसके धन है उसीके मित्र और उसीके बांधव होते हैं और वही पुरुष गिना जाता है वही पंडित कहलाता है ॥ ५ ॥

तादृशीजायतेबुद्धिर्व्यवसायोपितादृशः ॥
सहायास्तादृशाएवयादृशीभवितव्यता ॥ ६ ॥

दोहा–तैसीही मति होत है, तैसोई व्यवसाय ।
होनहार जैसो रहै, तैसोइ मिलत सहाय ॥ ६ ॥

भा० टी०-वैसीही बुद्धि और वैसाही उपाय होता है और वैसेही सहायक मिलते हैं जैसा होनहार है ॥ ६ ॥

कालः पचतिभूतानि कालः संहरतेप्रजाः ॥
कालः सुप्तेषुजागर्तिकालोहिदुरतिक्रमः ॥७॥

दोहा-काल पचावत जीव सब, करत प्रजन संहार ।
सबके सोयउ जागियतु, काल टरै नहिं टार ॥ ७ ॥

भा० टी०-काल सब प्राणियोंको पचाता है और कालही सब प्रजाका नाश करता है, सब पदार्थके लय होजानेपर काल जागता रहता है कालको कोई नहीं टाल सकता ॥ ७ ॥

नपश्यंतिचजन्मांधाः कामांधोनैवपश्यति ॥
मदोन्मत्तानपश्यंतिअर्थीदोषंनपश्यति ॥ ८ ॥

दोहा-जन्म अन्ध देखै नहीं, काम अन्ध तस जान ।
तैसेही मद अन्ध हैं, अर्थी दोष न मान ॥ ८ ॥

भा० टी०-जन्मके अन्धे नहीं देखते, कामसे जो अन्धा होरहा है उसको सूझता नहीं, मदोन्मत्त किसीको देखते नहीं और अर्थी दोषको नहीं देखता ॥ ८ ॥

स्वयंकर्मकरोत्यात्मास्वयंतत्फलमश्नुते ॥
स्वयंभ्रमतिसंसारेस्वयंतस्माद्विमुच्यते ॥९॥

दोहा—जीव कर्म आपै करै, भोगत फलहू आप ।
आप भ्रमत संसारमें, मुक्ति लहतहै आप ॥ ९ ॥

भा० टी०—जीव आपही कर्म करता है और उसका फलभी आपही भोगता है आपही संसारमें भ्रमता है और आपही उससे मुक्त भी होता है ॥ ९ ॥

राजाराष्ट्रकृतं पापं राज्ञः पापं पुरोहितः ॥
भर्ताचस्त्रीकृतंपापंशिष्यपापंगुरुस्तथा ॥ १० ॥

दोहा—प्रजापाप नृप भोगियत, प्रोहित नृपको पाप ॥
तियपातक पति शिष्यको, गुरु भोगत है आप ॥१०॥

भा० टी०—अपने राज्यमें कियेहुए पापको राजा और राजाके पापको पुरोहित भोगता है, स्त्रीकृतपापको स्वामीभोगता है वैसेही शिष्यके पापको गुरु ॥ १० ॥

ऋणकर्तापिताशत्रुर्माताचव्यभिचारिणी ॥
भार्यारूपवतीशत्रुः पुत्रःशत्रुरपंडितः ॥ ११ ॥

दोहा—ऋणकर्ता पितु शत्रु पर, पुरुष गामिनी मात ।
रूपवती तिय शत्रु है, शत्रु अपंडित जात ॥ ११ ॥

भा० टी०—ऋण करनेवाला पिता शत्रु है, व्यभिचारिणी माता और सुन्दरी स्त्री शत्रु है और मूर्ख पुत्र वैरी है ॥ ११ ॥

लुब्धमर्थेनगृह्णीयात्स्तब्धमंजलिकर्मणा ॥
मूर्खंछन्दानुवृत्त्याचयथार्थत्वेनपंडितम् ॥ १२॥

दोहा-धनसे लोभी वश करै, गर्विहि जोरि स्वपान ।
मूरखके अनुसरि चले, बुधजन सत्य कहान ॥१२॥

भा० टी०-लोभीको धनसे, अहंकारीको हाथ जोडनेसे, मूर्खको उसके अनुसार वर्तनेसे और पंडितको सच्चाईसे वश करना चाहिये१२

वरं न राज्यंनकुराजराज्यंवरंनमित्रंनकुमित्र-
मित्रम् ॥ वरंनशिष्योनकुशिष्यशिष्योवरं
नदारानकुदारदाराः ॥ १३ ॥

दोहा-नहिं कुराज विनु राज भल, त्यों कुमीत हूं मीत ।
शिष्य विना वरु है भलो, त्यों कुदार कहु मीत ॥१३॥

भा० टी०-राज्य न रहना यह अच्छा परन्तु कुराजाका राज्य होना यह अच्छा नहीं, मित्रका न होना यह अच्छा, परन्तु कुमित्रको मित्र करना अच्छा नहीं, शिष्य न हो यह अच्छा, परन्तु निंदित शिष्य कहलावे यह अच्छा नहीं, भार्या न रहे यह, अच्छा, पर कुभार्याका भार्या होना अच्छा नहीं ॥ १३ ॥

कुराजराज्येनकुतःप्रजासुखंकुमित्रमित्रेण·

कुतोभिनिर्वृतिः ॥ कुदारदारैश्च कुतो गृहे
रतिः कुशिष्यमध्यापयतःकुतोयशः ॥ १४ ॥

दोहा–कहँ कुराजत प्रजहि सुख, लहिं कुमीत सुख केइ ।
कहँ कुशिष्यते यश मिले, नहिं कुनारि रति गेह॥ १४॥

भा० टी०–दुष्ट राजाके राज्यसे प्रजाको सुख और कुमित्र मित्रसे आनन्द कैसे होसक्ता है ? दुष्ट स्त्रीसे गृहमें प्रीति और कुशिष्यके पढानेवालेकी कीर्ति कैसे होगी ॥ १४ ॥

सिंहादेकंबकादेकंशिक्षेच्चत्वारिकुक्कुटात् ॥
वायसात्पंचशिक्षेच्चषट्शुनस्त्रीणिगर्दभात्॥ १५॥

दोहा–एक एक बक सिंहसे, चारि कुकुट गुण लीन ।
पांच काकते श्वानते, षट गर्दभसे तीन ॥ १५ ॥

भा० टी०–सिंह और बकसे एक एक, व कुक्कुट (मुर्गा) से चार, कौवेसे पांच, कुत्तेसे छः और गदहेसे तीन गुण सीखने उचित हैं ॥ १५ ॥

प्रभूतंकार्यमल्पंवायन्नरःकर्तुमिच्छति ॥
सर्वारंभेणतत्कार्यंसिंहादेकंप्रचक्षते ॥ १६ ॥

दोहा–जो कारज करणीय है, बहुत होय वा नेक ।
सब यतनसे कीजिये यही सिंहगुण एक ॥ १६ ॥

भा० टी०-कार्य छोटा हो वा बडा जो करणीय हो, उसको सब प्रकारके प्रयत्नसे करना उचित है, इस एक गुणको सिंहसे सीखना कहते हैं ॥ १६ ॥

इंद्रियाणिचसंयम्यबकवत्पंडितो नरः ॥
देशकालंबलंज्ञात्वासर्वकार्याणिसाधयेत् ॥१७॥

दोहा-करि संयम इंद्रियनको, पंडित बगुल समान।
देश काल बल जानिकै, कारज करै सुजान ॥ १७ ॥

भा० टी०-विद्वान् पुरुषको चाहिये कि, इंद्रियोंका संयम करके देश, काल, बलको समझकर बगुलाके समान सब कार्यको साधै।१७

प्रत्युत्थानंचयुद्धंचसंविभागंचबन्धुषु ॥
स्वयमाक्रम्यभोगंचशिक्षेच्चत्वारिकुक्कुटात्१८॥

दोहा-युद्ध भोग आक्रमण करि, उचित समयपर जाग।
यही चारि गुण कुक्कुटके, देन बंधुजन भाग ॥ १८ ॥

भा० टी०-उचित समयमें जागना, रणमें उद्यत रहना और बन्धुओंको उनका भाग देना और आप आक्रमण करके भोग करना इन चार बातोंको कुक्कुट (मुर्गा) से सखिना चाहिये ॥ १८ ॥

गूढंचमैथुनं धाष्टर्चंकालेचालयसंग्रहम् ॥
अप्रमादमविश्वासंपंचशिक्षेच्चवायसात् ॥ १९ ॥

दोहा–मैथुन गुप्त रु धृष्टता, अवसर संग्रह गेह ।
अप्रमाद विश्वास तजि, पश्च काकबुधि लेह ॥ १९ ॥

भा० टी०–छिपकर मैथुन करना, धैर्य धरना, समयमें घरसंग्रह करना, सावधान रहना और किसीपर विश्वास न करना इन पांचों-को कौवेसे सीखना उचित है ॥ १९ ॥

बह्वाशीस्वल्पसन्तुष्टः सुनिद्रोलघुचेतनः ॥
स्वामिभक्तश्चशूरश्चषडेतेश्वानतो गुणाः॥२०॥

दोहा–बहु अहार थोरेहि तृपित, सुख सोवत झट जाग ।
छहगुण श्वानके शूरता, अरु स्वामी अनुराग ॥ २० ॥

भा०टी०–बहुत खानेकी शक्ति रहते भी थोडेहीसे सन्तुष्ट होना गाढ निद्रा रहते भी झटपट जागना, स्वामीकी भक्ति और शूरता इन छः गुणोंको कुत्तेसे सीखना चाहिये ॥ २० ॥

सुश्रान्तोऽपिवहेद्भारंशीतोष्णेनचपश्यति ॥
सन्तुष्टश्चरतेनित्यंत्रीणिशिक्षेच्चगर्दभात् ॥२१॥

दोहा–थक्यो भार ढोयो करै, शीत घाम समझै न ।
गर्दभके गुण तीनि ये, फिरै सदाही चैन ॥ २१ ॥

भा० टी०–अत्यन्त थकजानेपरभी बोझको ढोते जाना, शीत और उष्णपर दृष्टि न देना, सदा सन्तुष्ट होकर विचरना इन तीन बातों-को गदहेसे सीखना चाहिये ॥ २१ ॥

यएतान्विंशतिगुणानाचरिष्यतिमानवः ॥
कार्यावस्थासुसर्वासुअजेयःसभविष्यति ॥२२॥

दोहा-जे नर धारण करत हैं, यह उत्तम गुण बीस ।
होय विजय सब काममें, तिनकी बीसौ बीस ॥ २२ ॥

भा० टी०-जो नर इन बीस गुणोंको धारण करेगा वह सदा सब कार्योंमें विजयी होगा ॥ २२ ॥

इति षष्ठोऽध्यायः ६.

अथ सप्तमोऽध्यायः ७.

अर्थनाशंमनस्तापंगृहिणीचरितानि च ॥
नीचवाक्यंचापमानंमतिमान्नप्रकाशयेत् ॥ १ ॥

दोहा-अर्थनाश गृहिणी चरित, औ मनको संताप ।
नीचवचन अपमानको, बुधजन कहत न आप ॥ १ ॥

भा० टी०-धनका नाश, मनका ताप, गृहिणीका चरित, नीचका वचन और अपमान बुद्धिमान् प्रकाश न करे ॥ १ ॥

धनधान्यप्रयोगेषुविद्यासंग्रहणेषुच ॥
आहारेव्यवहारेचत्यक्तलज्जःसुखीभवेत् ॥ २ ॥

दोहा–विद्यासंग्रह करनमें, अन धनके व्यापार ।
छोडे, लज्जा सुख लहे, सभी आहार व्योहार ॥ २ ॥

भा०टी०–अन्न और धनके व्यापारमें, विद्याके संग्रह करनेमें और व्यवहारमें जो पुरुष लज्जाको दूर रक्खेगा वही सुखी होगा ॥ २ ॥

सन्तोषामृततृप्तानांयत्सुखंशांतिरेवच ॥
नचतद्धनलुब्धानामितश्चेतश्चधावताम् ॥३॥

दोहा–जो सुख संतोषी लहत, तोष अमिय करि पान ।
सो सुख लोभिनको नहीं, धाइ तजत जे प्रान ॥३॥

भा० टी०–सन्तोषरूप अमृतसे जो लोग तृप्त होते हैं उनको जो शांतिसुख होता है वह धनके लोभसे जो इधर उधर दौडा करते हैं उनको नहीं होता ॥ ३ ॥

सन्तोषस्त्रिषुकर्तव्यःस्वदारेभोजनेधने ॥
त्रिषुचैवनकर्तव्योऽध्ययनेजपदानयोः ॥ ४ ॥

दोहा–निजतिय भोजन विभवमें, सदा राखिये तोष ।
पढिबो जप औ दानमें, है सन्तोषै दोष ॥ ४ ॥

भा० टी०–अपनी स्त्री, भोजन और धन इन तीनोंमें सन्तोष करना चाहिये । पढना, जप और दान इन तीनोंमें सन्तोष कभी नहीं करना चाहिये ॥ ४ ॥

विप्रयोर्विप्रवह्न्योश्चदंपत्योःस्वामिभृत्ययोः।
अन्तरेणनगन्तव्यंहलस्यवृषभस्यच ॥ ५ ॥

दोहा–द्वै द्विज औ द्विज अग्निहूं, स्वामि भृत्य पति नारि।
तैसेही हल बैलको, बीच जाइये वारि ॥ ५ ॥

भा० टी०–दो ब्राह्मण और ब्राह्मण अग्नि, स्त्री पुरुष, स्वामी भृत्य, हल और बैल इनके मध्य होकर नहीं जाना चाहिये ॥ ५ ॥

पादाभ्यांनस्पृशेदग्निंगुरुंब्राह्मणमेवच ॥
नैवगांचकुमारींचनवृद्धंनाशिशुंतथा ॥ ६ ॥

दोहा–विप्र कुमारी अग्नि अरु, वृद्ध बाल अरु गाय।
इन्हें कदापि न कीजिये, स्परश पांव छू आय ॥ ६ ॥

भा० टी०–अग्नि, गुरु और ब्राह्मण इनको और गौको, कुमारीको, वृद्धको और बालकको पैरसे न छूना चाहिये ॥ ६ ॥

शकटंपंचहस्तेनदशहस्तेनवाजिनम्।
हस्तिनंतुसहस्रेणदेशत्यागेनदुर्जनम् ॥ ७ ॥

दोहा–पांच हाथ गाडीनसे, दश घोडनसे दूर।
और हजार हाथीनसे, तजहि देश जहँ क्रूर ॥ ७ ॥

भा० टी०–गाडीको पांच हाथपर, घोडेको दश हाथपर. हाथीको हजार हाथपर, दुर्जनको देशत्याग करके छोडना चाहिये ॥ ७ ॥

हस्तीह्यंकुशमात्रेणवाजीहस्तेनताड्यते ।
शृंगीलकुटहस्तेनखड्गहस्तेनदुर्जनः ॥ ८ ॥

दोहा—गज अंकुश औ हाथसे, अश्व ताडना देय ।
शृंगिन कहँ लकुटी लिये, दुष्ट खडग कर लेय ॥ ८ ॥

भा० टी०—हाथी केवल अंकुशसे. घोडा हाथसे, सींगवाले जीव लाठीसे और दुर्जन तरवार संयुक्त हाथसे दंड पाता है ॥ ८ ॥

तुष्यंतिभोजनेविप्रामयूराघनगर्जिते ।
साधवः परसम्पत्तौ खलाः परविपत्तिषु ॥ ९ ॥

दोहा—मोर मेघगर्जन समय, विप्र सुभोजन खाय ।
साधु तुष्ट परसुख भये, खल पर दुख हरषाय ॥ ९ ॥

भा० टी०—भोजनके समय ब्राह्मण और मेघके गर्जनेपर मयूर, दूसरेको संपत्ति प्राप्त होनेपर साधु और दूसरेको विपत्ति आनेपर दुर्जन संतुष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

अनुलोमेनबलिनंप्रतिलोमेनदुर्बलम् ।
आत्मतुल्यबलंशत्रुंविनयेनबलेनवा ॥ १० ॥

दोहा—बलिहि तासु अनुकूल चलि, अबलिहि चलि प्रतिकूल ।
सब बलते वा विनयते, करि अरि निज समतूल ॥१०॥

भा०टी०–बली वैरीको उसके अनुकूल व्यवहार करनेसे, यदि वह दुर्बल हो तो उसे प्रतिकूलतासे वश करे, बलमें अपने समान शत्रुको विनयसे अथवा बलसे जीते ॥ १० ॥

बाहुवीर्यंबलंराज्ञोब्राह्मणोब्रह्मविद्बली ॥
रूपयौवनमाधुर्यंस्त्रीणाबलमनुत्तमम् ॥ ११ ॥

दोहा–ब्राह्मणका बल वेद है, अहै, बाहुबल भूप ।
तरुणाई औ मधुरता, पुनि अबलन बल रूप ॥ ११ ॥

भा० टी०–राजाको बाहुवीर्य बल है और ब्राह्मण ब्रह्मज्ञानी वा वेदपाठी बली होताहै और स्त्रियोंको सुन्दरता तरुणता और मधुरता अतिउत्तम बल है ॥ ११ ॥

नात्यन्तंसरलैर्भाव्यंगत्वापश्यवनस्थलीम् ॥
छिद्यन्तेसरलास्तत्रकुब्जास्तिष्ठन्तिपादपाः १२॥

दोहा–नाहिं अति सरल सुभावते, रहन उचित जग माहिं ।
काटैं सीधे वृक्षको, टेढन पूछैं नाहिं ॥ १२ ॥

भा० टी०–अतिसीधे स्वभावसे नहीं रहना चाहिये।इस कारण कि, बनमें जाकर देखो, सीधे वृक्ष काटे जाते हैं और टेढे खडे रहते हैं ॥ १२ ॥

यत्रोदकंतत्रवसंतिहंसास्तथैवशुष्कंपरिवर्जय-

न्ति ॥ नहंसतुल्येननरेणभाव्यंपुनस्त्यजंतः पुनराश्रयन्तः ॥ १३ ॥

दोहा–बसैं हंस जहँ जल रहै, सूखे तेहि तज जाहिं ।
ग्रहण त्याग पुनिपुनि नरहिं, हंससरिस भल नाहिं १३॥

भा० टी०–जहां जल रहता है वहीं ही हंस बसते हैं, वैसेही सूखे सरको छोड देते हैं, नरको हंसके समान नहीं रहना चाहिये कि, वे बारबार छोड देते हैं और बारबार आश्रय लेते हैं ॥१३॥

उपार्जितानांवित्तानांत्यागेनैवहिरक्षणम् ॥
तडागोदरसंस्थानांपरिस्रवइवांभसाम् ॥ १४ ॥

दोहा–अर्जितधनको त्यागहि, रक्षा गावत नीति ।
जस तडागके बीचके, जलँ निकसनकी रीति ॥ १४ ॥

भा० टी०–अर्जित धनोंको व्यय करनाही रक्षा है, जैसे तडागके भितरके जलका निकलना ॥ १४ ॥

यस्यार्थस्तस्यमित्राणियस्यार्थस्तस्यबांधवाः ॥
यस्यार्थःसपुमाँल्लोकेयस्यार्थःसचजीवति ॥ १५॥

दोहा–जाहि अर्थ तेहि मित्र अरु, बन्धु आदि सब तात ।
सो जीवत है जगतमें, सोइ पुरुष गानि जात ॥ १५ ॥

भा० टी०–जिसके धन रहता है उसीके मित्र होते हैं जिसके पास

अर्थ रहता है उसीके बन्धु होते हैं, जिसके धन रहता है वह पुरुष गिना जाता है और जिसके अर्थ है वही जीता है ॥ १५ ॥

स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके चत्वारि चिह्नानि-
वसंति देहे ॥ दानप्रसंगो मधुरा च वाणी देवार्चनं
ब्राह्मणतर्पणं च ॥ १६ ॥

दोहा–स्वर्गीय चिह्न मनुष्यके, यही चार पहंचान ।
मधुर वचन देवार्चना, दान विप्रको मान ॥ १६ ॥

भा० टी–संसारमें आनेपर स्वर्गवासियोंके शरीरमें चार चिह्न रहते हैं दानका स्वभाव, मीठा वचन, देवताकी पूजा, ब्राह्मणको तृप्त करना अर्थात् जिन लोगोंमें दान आदि लक्षण रहैं उनको जानना चाहिये कि ये स्वर्गवासी हैं उन्होंने अपने पुण्यके प्रभावसे मृत्युलोकमें अवतार लिये हैं ॥ १६ ॥

अत्यन्तकोपः कटुका च वाणी दरिद्रता च स्वज-
नेषु वैरम् ॥ नीचप्रसंगः कुलहीनसेवा चिह्नानि
देहे नरकस्थितानाम् ॥ १७ ॥

दोहा–अतिहि कोप कटुवचनहू, दारिद नीच मिलान ।
स्वजन वैर अकुलिन टहल, यह षट नरक निशान १७॥

भा० टी०–अत्यन्त क्रोध, कटुवचन, दरिद्रता, अपने जनोंमें वैर नीचका संग, कुलहीनकी सेवा ये चिह्न नरकवासियोंके देहमें रहतेहैं १७

गम्यतेयदिमृगेन्द्रमादिरंलभ्यतेकरिकपोलमौक्तिकम् ॥ जंबुकालयगतेचलभ्यतेवत्सपुच्छखरचर्मखण्डनम् ॥ १८ ॥

दोहा—सिंहभवन यदि जाय कोउ, गज मुक्ता तहँ पाव ।
वत्सपूँछ खरचर्म टुक, स्यार मांद जो जाव ॥ १८ ॥

भा० टी०—यदि कोई सिंहकी गुहामें जापडै तो उसको हाथीके कपोलके मोती मिलते हैं और सियारके माँदमें जानेपर बछडेकी पूंछ और गदहेके चमडेका टुकडा मिलता है ॥ १८ ॥

शुनःपुच्छमिवव्यर्थंजीवितंविद्ययाविना ॥
नगुह्यगोपने शक्तंनचदंशानिवारणे ॥ १९ ॥

दोहा—श्वानपूँछसम जीवनो, विद्या विनु है व्यर्थ ।
दंशनिवारण तन ढकना, नहिं एको सामर्थ ॥ १९ ॥

भा० टी०—कुत्तेके पूँछके समान विद्याविना जीना व्यर्थ है कुत्तेकी पूंछ गोप्येन्द्रियको ढांप नहीं सकती है न मच्छर आदि जीवोंको उडा सकती है ॥ १९ ॥

वाचांशौचंचमनसःशौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥
सर्वभूतदयाशौचमेतच्छौचंपरार्थिनाम् ॥ २० ॥

दोहा-वचन शुद्ध मन शुद्ध औ, इंद्रिय संयम शुद्ध।
भूतदया औ स्वच्छता, पर अर्थिन यह शुद्ध ॥ २० ॥

भा० टी०-वचनकी शुद्धि, मनकी शुद्धि, इन्द्रियोंका संयम, सब जीवोंपर दया और पवित्रता ये परार्थियोंकी शुद्धि है ॥ २० ॥

पुष्पेगंधंतिलेतैलंकाष्ठेऽग्निंपयसिघृतम् ॥
इक्षौगुडंतथादेहेपश्यात्मानंविवेकतः ॥ २१ ॥

दोहा-बास सुमनमहँ तेल तिल, अग्नि काठ पय घीव।
ऊखहि गुड तिमि देहमें, आतम लखु मथि सीव॥२१॥

भा० टी०-फूलमें गन्ध, तिलमें तेल, काष्ठमें आग, दूधमें घी ऊखमें गुड जैसे, वैसेही देहमें आत्माको विचारसे देखो ॥ २१ ॥

इति सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः ८.

अधमाधनमिच्छन्तिधनंमानंचमध्यमाः ॥
उत्तमामानमिच्छन्तिमानोहिमहतांधनम् ॥ १॥

दोहा-अधम धनहिको चहत हैं, मध्यम धन और मान।
मानै धन है बडनको, उत्तम चाहैं मान ॥ १ ॥

भा० टी०-अधम धनही चाहते हैं, मध्यम धन और मान, उत्तम मानही चाहते हैं, इस कारण कि महात्माओंका धन मानही है॥१॥

इक्षूनपः पयोमूलंताम्बूलंफलमौषधम् ॥
भक्षयित्वापिकर्त्तयाः स्नानदाना-
दिकाः क्रियाः ॥ २ ॥

सोरठा–ऊख वारि पय मूल, औषधहूको खायके ।
तथा खाय तांबूल, स्नान दान आदिक उचित ॥२ ॥

भा०टी०–ऊख, जल, दूध, फल, मूल और औषध इन वस्तुओंके भोजन करनेपरभी स्नान दान आदि क्रिया करनी चाहिये ॥ २ ॥

दीपोभक्षयतेध्वांतंकज्जलंचप्रसूयते ॥
यदन्नंभक्ष्यतेनित्यंजायतेतादृशीप्रजा ॥ ३ ॥

दोहा–दीपक तमको खात है, तो कज्जल उपजाय ।
अन्न जैसेही खाय जो, तैसइ संतति पाय ॥ ३ ॥

भा० टी०–दीप अन्धकारको खाय जाता है और काजलको जन्माताहै. जो जैसा अन्न सदा खाताहै उसीकी वैसीही सन्तति होती है॥३॥

वित्तंदेहिगुणान्वितेषुमतिमन्नान्यत्रदेहिक्वाचि-
त्प्राप्तंवारिनिधेर्जलंघनमुखेमाधुर्ययुक्तंसदा ॥
जीवन्स्थावरजंगमांश्च सकलान्सञ्जीव्यभूम-
ण्डलं भूयः पश्यतिदेवकोटिगुणितं गच्छेत्त-
मम्भोनिधिम् ॥ ४ ॥

दोहा–गुणिहि न औरभि देइ धन, लखिय जलद जलपाय ॥
मधुर कोटिगुण करि जगत, जीवन जलनिधि जाय ॥४॥

भा०टी०–हे मतिमन् ! गुणियोंको धन दो, औरोंको कभी मत दो, समुद्रसे मेघके मुखमें प्राप्त होकर जल सदा मधुर हो जाता है, पृथ्वी-पर चर अचर सब जीवोंको जिलाकर फिर देखो, वही जल कोटि गुणा होकर उसी समुद्रमें चला जाता है ॥ ४ ॥

चांडालानांसहस्रैश्चसूरिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥
एकोहियवनः प्रोक्तोननीचोयवनात्परः ॥ ५ ॥

दोहा–एक सहस चंडाल सम, यवन नीच इक होय ।
तत्त्वदर्शि कह यवनते, नीच और नहिं कोय ॥ ५ ॥

भा०टी०–तत्त्वदर्शियोंने कहा है कि सहस्र चांडालोंके तुल्य एक यवन होता है और यवनसे नीच दूसरा कोई नहीं है ॥ ५ ॥

तैलाभ्यंगेचिताधूमेमैथुनेक्षौरकर्मणि ॥
तावद्भवतिचांडालोयावत्स्नानंनचाचरेत् ॥ ६ ॥

दोहा–चिताधूम तनुतेल लगि, मैथुन क्षौर बनाय ।
तबलौं है चंडालसम, जबलौं नाहिं नहाय ॥ ६ ॥

भा०टी०–तेल लगानेपर, चिताके धूम लगनेपर, स्त्रीप्रसंग करनेपर, बाल बनवानेपर तबतक चांडालही बना रहता है जबतक स्नान नहीं करता है ॥ ६ ॥

अजीर्णेभेषजंवारिजीर्णेवारिबलप्रदम् ॥
भोजनेचामृतंवारि भोजनांतेविषप्रदम् ॥ ७ ॥

दोहा–वारि अजीरण औषध, जीरणमें बलदानि ।
भोजनके संग अमृत है, भोजनान्त विष मानि ॥७ ॥

भा०टी०–अपच होनेपर जल औषध है, पचजानेपर जल बलको देता है, भोजनके समय पानी अमृतके समान है और भोजनके अन्तमें विषका फल देता है ॥ ७ ॥

हतंज्ञानंक्रियाहीनंहतश्चाज्ञानतोनरः ॥
हतंनिर्नायकंसैन्यंस्त्रियोनष्टाह्यभर्तृकाः ॥ ८ ॥

दोहा–ज्ञान क्रिया विन नष्ट है, नर नसु जो अज्ञान ।
निरनायक नसु सैनहू, त्यों पतिविनु तिय जान ॥ ८ ॥

भा०टी०–क्रियाके विना ज्ञान व्यर्थ है, अज्ञानसे नर मरासा है, सेनापतिके विना सेना मारी जातीहै और स्वामीहीन स्त्री नष्ट होजातीहै ॥८

वृद्धकालेमृताभार्याबन्धुहस्तगतंधनम् ॥
भोजनंचपराधीनंतिस्रः पुंसांविडम्बनाः ॥ ९ ॥

दोहा–वृद्धसमय जो मरे तिय, बंधुहाथ धन जाय ।
पराधीन भोजन मिलै, यह तीनों दुखदाय ॥ ९ ॥

भा० टी०-बुढापेमें मरी स्त्री बन्धुके हाथमें गया धन और दूसरेके अधीन भोजन ये तीन पुरुषोंकी बिडम्बना है अर्थात् दुःखदायक होते हैं ॥ ९ ॥

अग्निहोत्रंविनावेदानचदानंविनाक्रिया ॥
नभावेनविनासिद्धिस्तस्माद्भावोहिकारणम् १० ॥

दोहा-अग्निहोत्र विनु वेद नहिं, नहीं क्रिया विनु दान ।
भाव विना नहिं सिद्धि है, सबमें भाव प्रधान ॥ १० ॥

भा०टी०-अग्निहोत्रके विना वेदका पढना व्यर्थ होता है, दानके विना यज्ञादिक क्रिया नहीं बनती, भावके विना कोई सिद्धि नहीं होती इस हेतु प्रेमही सबका कारण है ॥ १० ॥

काष्ठपाषाणधातूनांकृत्वाभावेनसेवनम् ॥
श्रद्धयाचतथासिद्धिस्तस्यविष्णोःप्रसादतः ११ ॥

दोहा-धातु काठ पाषाणको, करु सेवन युतभाव ।
श्रद्धासे भगवत्कृपा, तैसो तेहिं सिधि आव ॥ ११ ॥

भा०टी०-धातु, काष्ठ, पाषाणको भावसहित सेवन करना श्रद्धासे और भगवत्कृपासे जैसा भाव है तैसीही सिद्धि होती है ॥ ११ ॥

नदेवोविद्यतेकाष्ठेनपाषाणेनमृन्मये ॥
भावेहिविद्यतेदेवस्तस्माद्भावोहिकारणम् ॥ १२ ॥

सोरठा—देव न काठ पषाण, नहीं माटिहूमें रहै ।
जानें सुघर सुजान, विद्यमान है भावमें ॥ १२ ॥

भा०टी०—देवता काठमें नहीं है न पाषाणमें है न मृत्तिकाकी मूर्तिमें है. निश्चय है कि देवता भावमें विद्यमान है इस हेतु भावही सबका कारण है ॥ १२ ॥

शांतितुल्यंतपोनास्तिनसन्तोषात्परंसुखम् ॥
नतृष्णायाःपराव्याधिर्नचधर्मोदयासमः ॥ १३ ॥

दोहा—शांतीसम तप और नहिं, सुख संतोष समान ।
नहिं तृष्णासम व्याधि है, धर्म दयासम आन ॥ १३ ॥

भा०टी०—शांतिके समान दूसरा तप नहीं है, न संतोषसे परे सुख, न तृष्णासे दूसरी व्याधि है, न दयासे अधिक धर्म है ॥ १३ ॥

क्रोधोवैवस्वतोराजातृष्णावैतरणीनदी ॥
विद्याकामदुघाधेनुःसन्तोषोनन्दनंवनम् ॥ १४ ॥

दोहा—तृष्णा वैतरणी नदी, यमस्वरूप है रोष ।
कामधेनु विद्या अहै, नन्दनवन संतोष ॥ १४ ॥

भा०टी०—क्रोध यमराज है और तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या कामधेनु गाय है और संतोष इन्द्रकी वाटिका है ॥ १४ ॥

गुणोभूषयतेरूपंशीलंभूषयतेकुलम् ॥
सिद्धिर्भूषयतेविद्यांभोगोभूषयतेधनम् ॥ १५ ॥

दोहा—रूपहि गुण भूषित करै, कुल करि शील प्रकाश ।
विद्या भूषित सिद्धि करि, धनलहि भोग विलाश ॥ १५ ॥

भा० टी०—गुण रूपको भूषित करता है, शील कुलको अलंकृत करता है, सिद्धि विद्याको भूषित करती है और भोग धनको भूषित करता है ॥ १५ ॥

निर्गुणस्यहतंरूपंदुःशीलस्यहतंकुलम् ॥
असिद्धस्यहताविद्याह्यभोगेनहतंधनम् ॥ १६ ॥

दोहा—निर्गुणका हत रूप है, हत कुशील कुलमान ।
हत विद्याहु असिद्धकी, हत अभोग धन धान ॥ १६ ॥

भा० टी०—निर्गुणकी सुन्दरता व्यर्थ है, शीलहीनका कुल निंदित होताहै, सिद्धि विना विद्या व्यर्थ है, भोगके विना धन व्यर्थ है १६॥

शुद्धंभूमिगतंतोयंशुद्धानारीपतिव्रता ॥
शुचिःक्षेमकरोराजासन्तुष्टोब्राह्मणःशुचिः॥ १७॥

दोहा—शुद्ध भूमिगत वारि है, नारि पतिव्रत जौन ।
क्षेम करै सो भूप शुचि, विप्र तोषि शुचि तौ न ॥१७॥

भा० टी०–भूमिगत जल पवित्र होता है पतिव्रता स्त्री पवित्र होती है, कल्याण करनेवाला राजा पवित्र गिना जाता है, ब्राह्मण संतोषी शुद्ध होता है ॥ १७ ॥

असन्तुष्टाद्विजानष्टाः संतुष्टाश्चमहीभृतः ॥
सलज्जागणिकानष्टानिर्लज्जाश्चकुलांगनाः १८॥

दोहा–असन्तुष्ट द्विज नष्ट है, नष्ट तुष्ट नरराज ।
नष्ट सलज्जा पातुरी, कुलनारी बिन लाज ॥ १८ ॥

भा० टी०–असन्तोषी ब्राह्मण निंदित गिने जाते हैं और संतोषि राजा सलज्जा वेश्य और लज्जाहीन कुलस्त्री निंदित गिनी जाती है ॥ १८ ॥

किंकुलेनविशालेनविद्याहीनेनदेहिनाम् ॥
दुष्कुलंचापिविदुषोदेवैरपिसुपूज्यते ॥ १९ ॥

दोहा–विद्याहीन विशालहू, कुल मनुष्य केहिकाज ।
दुष्टकुलहु विद्वानको, पूजित देव समाज ॥ १९ ॥

भा० टी०–विद्याहीन बडे कुलसे मनुष्योंको क्या लाभ है विद्वानका नीचभी कुल देवताओंसे पूजा पाता है ॥ १९ ॥

विद्वान्प्रशस्यतेलोकेविद्वान्सर्वत्रगौरवम् ॥
विद्ययालभतेसर्वंविद्यासर्वत्रपूज्यते ॥ २० ॥

दोहा-विदुष प्रशंसित होत जग, सब थल गौरव पाय ।
विद्यासे सब मिलत हैं, सब थल सोइ पुजाय ॥ २० ॥

भा० टी०-संसारमें विद्वान्ही प्रशंसित होता है, विद्वान् सब स्थानमें आदर पाता है, विद्याहीसे सब मिलता है, विद्याही सब स्थानमें पूजित होती है ॥ २० ॥

रूपयौवनसंपन्नाविशालकुलसंभवाः ॥
विद्याहीनानशोभंतेनिर्गंधाइवकिंशुकाः ॥२१ ॥

दोहा-छवियौवनसम्पन्नहू, जनित कुलहु अनुकूल ।
सोहु न विद्या विनु रहित, गन्ध टेसु जिमि फूल ॥२१ ॥

भा० टी०-सुन्दर तरुणतायुत और बडे कुलमें उत्पन्नभी विद्याहीन पुरुष ऐसे नहीं शोभते जैसे बिना गंध पलाशके फूल ॥ २१ ॥

मांसभक्षैःसुरापानैर्मूर्खैश्चाक्षरवर्जितैः ॥
पशुभिःपुरुषाकारैर्भाराक्रांतास्तिमेदिनी ॥२२॥

दोहा-मांसभक्ष मदिरापियत, मूरख अक्षरहीन ।
नराकार पशुभार यह, पृथिवी नहिं सहु तीन ॥ २२ ॥

भा० टी०-मांसके भक्षण और मदिरापान करनेवाले, निरक्षर और मूर्ख इन पुरुषाकार पशुओंके भारसे पृथ्वी पीडित रहती है ॥२२॥

अन्नहीनोदहेद्राष्ट्रंमंत्रहीनश्चऋत्विजः ॥
यजमानंदानहीनोनास्तियज्ञसमोरिपुः ॥ २३ ॥

दोहा–अन्नहीन राज्यहि दहत, दानहीन यजमान।
मंत्रहीन ऋत्विजन कहँ, क्रतुसम रिपु नहिं आन ॥२३॥

भा० टी०–यज्ञ यदि अन्नहीन हो तो राज्यको, मंत्रहीन हो तो ऋत्विजोंको, दानहीन हो तो यजमानको जलाता है, इस कारण यज्ञके समान कोईभी शत्रु नहीं है ॥ २३ ॥

इति वृद्धचाणक्येऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ९.

मुक्तिमिच्छसिचेत्तातविषयान्विषवत्त्यज ॥
क्षमार्जवदयाशौचंसत्यंपीयूषवत्पिब ॥ १॥

सोरठा–मुक्ति चहो जो तात, विषयनको तजु विषसरिस ॥
दया शील सच बात, शौच सरलता गहु क्षमा ॥ १ ॥

भा० टी०–हे भाई ! यदि मुक्ति चाहते हो तो विषयोंको विषके समान छोड दो ! सहनशीलता, सरलता, दया, पवित्रता और सचाईको अमृतकी नाई पिओ ॥ १ ॥

परस्परस्यमर्माणि ये भाषतेनराधमाः ॥
तएवविलयंयांति वल्मीकोदरसर्पवत् ॥ २ ॥

दोहा-जौन अधम नर भाषते, मर्म परस्पर आप ।
ते विलाय जैहैं यथा, मधि विमवटको साँप ॥ २ ॥

भा० टी०-जो नराधम परस्पर अन्तरात्माके दुःखदायक वचनको भाषण करते हैं वे निश्चयकरिके नष्ट होजाते हैं, जैसे विमौटमें पडकर सांप ॥ २ ॥

गन्धः सुवर्णेफलमिक्षुदण्डेनाकारिपुष्पंखलु चंदनस्य ॥ विद्वान्धनीभूपतिदीर्घजीवीधातुः पुरा कोऽपि न बुद्धिदोऽभूत् ॥ ३ ॥

दोहा-गन्ध सोन फल इक्षु धन, बुध चिरायु नरनाह ।
सुमन मलय धाता न किय, लहु ज्ञाता गुरु नाह ॥ ३ ॥

भा० टी०-सुवर्णमें गन्ध, ऊखमें फल, चंदनमें फूल, विद्वान् धनी और राजा चिरजीवी न किया इससे निश्चय है कि, विधाताको पहिले कोई बुद्धिदाता न था ॥ ३ ॥

सर्वौषधीनाममृताप्रधाना सर्वेषुसौख्येष्वशनं प्रधानम् । सर्वेन्द्रियाणांनयनंप्रधानं सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम् ॥ ४ ॥

दोहा--गुरच औषधिन सुखनमें, भोजन कह्यो प्रधान ।

चख इंद्रिय सब अंगमें, सिर प्रधान तिमि जान ॥ ४ ॥

भा० टी०--सब औषधियोंमें गुरच (गिलोय) प्रधान है, सब सुखोंमें भोजन श्रेष्ठ है, सब इन्द्रियोंमें आंख उत्तम है, सब अंगोंमें शिर श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

दूतोनसञ्चरतिखेनचलेच्चवार्ता ।

पूर्वंनजल्पितमिदंनचसङ्गमोऽस्ति ॥

व्योम्निस्थितंरविशशिग्रहणंप्रशस्तं ।

जानातियोद्विजवरः सकथंनविद्वान् ॥ ५ ॥

दोहा--दूत वचन गति संग नहिं, नभ न आदि कहु कोय ।

शशिरविग्रहण बखानु जो, द्विज न विदुष किमि होय ॥५

भा० टी०--आकाशमें दूत नहीं जासक्ता, न वार्ताकी चर्चा चल सकती, न पहिलेहीसे किसीने कहिरक्खा है और न किसीसे सङ्गम हो सक्ता ऐसी दशामें आकाशमें स्थित सूर्यचन्द्रके ग्रहणको जो द्विजवर स्पष्ट जानता है वह कैसे विद्वान् नहीं है ॥ ५ ॥

विद्यार्थीसेवकःपांथःक्षुधार्तोभयकातरः ॥

भांडारीप्रतिहारश्चसप्तसुप्तान्प्रबोधयेत् ॥ ६ ॥

दोहा--द्वारपाल सेवक पथिक, समय क्षुधारत पाय ।

भांडारी विद्यारथी, सोवत सात जगाय ॥ ६ ॥

भा० टी०—विद्यार्थी, सेवक, पथिक, भूखसे पीडित, भयसे कातर, भांडारी और द्वारपाल ये सात यदि सोते हों तो जगादेना चाहिये६॥

अहिंनृपंचशार्दूलंविटिंचबालकंतथा ॥
परश्वानंचमूर्खंचसप्तसुप्तान्नबोधयेत् ॥ ७ ॥

दोहा—भूपति मृगपति मूढपति, त्यों शूकर औ बाल ।
सोवत सात जगाइये, नहिं पर कूकर व्याल ॥ ७ ॥

भा० टी०—सांप, राजा, व्याघ्र, सूअर, वैसेही बालक, दूसरेका कुत्ता और मूर्ख ये सात सोते हो तो नहीं जगाना चाहिये ॥ ७ ॥

अर्थाधीताश्चयैर्वेदास्तथाशूद्रान्नभोजिनः ॥
तेद्विजाःकिंकरिष्यंतिनिर्विषाइवपन्नगाः ॥ ८ ॥

दोहा—अर्थहेतु वेदहि पढें, खाय शूद्रको धान ।
ते द्विज क्या कर सकतहैं, विन विष व्यालसमान ॥ ८॥

भा० टी०--जिन्होंने धनके अर्थ वेदको पढा, वैसेही जो शूद्रका अन्न भोजन करते हैं वे ब्राह्मण विषहीन सर्पके समान क्या कर सकते हैं ॥ ८ ॥

यस्मिन्रुष्टेभयंनास्तितुष्टेनैवधनागमः ॥
निग्रहोऽनुग्रहोनास्तिसरुष्टः किंकरिष्यति ॥९॥

दोहा–रुष्ट भये भय तुष्टसे, नहीं धनागम होय ।
दंड सहाय न करिसकै, का रिसाय करु सोय ॥ ९ ॥

भा० टी०–जिसके क्रुद्ध होनेपर न भय है, प्रसन्न होनेपर न धनका लाभ, न दंड या अनुग्रह होसकताहै वह रुष्ट होकर क्या करेगा ९॥

निर्विषेणापिसर्पेणकर्तव्यामहतीफणा ॥
विषमस्तुनचाप्यस्तुफटाटोपोभयंकरः ॥ १० ॥

दोहा–विन विषहूके सांपको, चाहिन फनै बढाय ।
होउ नहीं वा होउ विष, फटाटोप भयदाय ॥१०॥

भा० टी०–विषहीन सांपकोभी अपनी फणा बढानी चाहिये इस कारण कि, विष हो वा न हो आडम्बर भयजनक होता है ॥१०॥

प्रातर्द्यूतप्रसंगेनमध्याह्नेस्त्रीप्रसंगतः ॥
रात्रौचोरप्रसंगेनकालोगच्छतिधीमताम् ॥११॥

दोहा–प्रातः द्यूत प्रसंगसे, मध्य स्त्रीपरसंग ।
सायं चोरप्रसंग कह, काल गेह तब अंग ॥ ११ ॥

भा० टी०–प्रातःकालमें जुआरियोंकी कथासे अर्थात् महाभारतसे, मध्याह्नमें स्त्रीके प्रसंगसे अर्थात् रामायणसे, रात्रिमें चोरकी वार्तासे अर्थात् भागवतसे बुद्धिमानोंका समय बीतता है । तात्पर्य यह कि महाभारतके सुननेसे यह निश्चय होजाता है कि, जुआ और कलह

छलका घर है, इस लोक और पर लोकमें उपकार करनेवाले कर्मोंको महाभारतमें लिखी हुई रीतियोंसे करनेपर उन कामोंका पूरा फल होताहै, इस कारण बुद्धिमान् लोग प्रातःकालही महाभारतको सुनते हैं, जिससे दिनभर उसी रीतिसे काम करते जायँ। रामायण सुननेसे स्पष्ट उदाहरण मिलता है कि स्त्रीके वश होनेसे अत्यन्त दुःख होताहै और परस्त्रीपर दृष्टि देनेसे पुत्र कलत्र जड़-मूलके साथ पुरुषका नाश होजाताहै, इस हेतु मध्याह्नमें अच्छे लोग रामायणको सुनते हैं, प्रायः रात्रिमें लोग इन्द्रियोंके वश हो जाते हैं और इन्द्रियोंका यह स्वभाव है कि, मनको अपने २ विषयोंमें लगाकर जीवको विषयोंमें लगा देती हैं, इसी हेतुसे इन्द्रियोंको आत्माहारीभी कहते हैं। और जो लोग रातको भागवत सुनते हैं वे कृष्णके चारित्रको स्मरण करके इंद्रियोंके वश नहीं होते, क्योंकि सोलह हजारसे अधिक स्त्रियोंके रहतेभी कृष्णचन्द्र इंद्रियोंके वश न हुए और इन्द्रियोंके संयमकी रीतिभी जानजाते हैं ॥ ११ ॥

स्वहस्तग्रथितामाला स्वहस्तघृष्टचन्दनम् ॥
स्वहस्तलिखितंस्तोत्रंशक्रस्यापिश्रियंहरेत् १२॥

दोहा--सुमन माल निज कर रचित, स्वलिखित पुस्तक पाठ।
धन इंद्रहु नाशै दिये, स्वघर्षित चन्दल काठ ॥ १२ ॥

भा० टी०—अपने हाथसे गुथी माला, अपने हाथसे घिसा चन्दन, अपने हाथसे लिखा स्तोत्र ये इन्द्रकीभी लक्ष्मीको हरलेते हैं ॥ १२॥

इक्षुदण्डास्तिलाःशूद्राःकांताहेमचमेदिनी ॥
चन्दनंदधितांबूलंमर्दनंगुणवर्धनम् ॥ १३ ॥

दोहा--ऊख शूद्र दधि नायिका, हेम मेदिनी पान ।
तिल चन्दन इन नवनको, मर्दनही गुण जान ॥ १३ ॥

भा० टी०—ऊख, तिल, शूद्र, कान्ता, सोना, पृथ्वी, चन्दन, दही और पान इनका मर्दन गुणवर्द्धन है ॥ १३ ॥

दरिद्रताधीरतयाविराजतेकुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते ॥ कदन्नताचोष्णतया विराजते कुरूपताशीलयुताविराजते ॥ १४ ॥

दोहा -दारिद सोहत धीरते, कुपट शुभ्रता पाय ।
लहि कुअन्न उष्णत्वको, शील कुरूप सुहाय ॥ १४ ॥

भा० टी०—दरिद्रताभी धीरतासे शोभती है, स्वच्छतासे कुवस्त्र सुन्दर जान पडता है, कुअन्नभी उष्णतासे मीठा लगता है, कुरूपताभी सुशील हो तो शोभती है ॥ १४ ॥

इति वृद्धचाणक्ये नवमोऽध्यायः ।

अथ वृद्धचाणक्योत्तरार्द्धम् ।

दशमोऽध्यायः १०.

धनहीनोनहीनश्च धनिकः स सुनिश्चयः ॥
विद्यारत्नेनयोहीनः सहीनःसर्ववस्तुषु ॥ १ ॥

दोहा—हीन नहीं धनहीन है, निश्चय सो मनमान ।
विद्यारत्न विहीन जो, सकल हीन तेहि जान ॥ १ ॥

भा० टी०—धनहीन हीन नहीं गिनाजाता निश्चय है कि, यह धनी ही है, विद्यारत्नसे जो हीन है वह सब वस्तुओंमें हीनहै १॥

दृष्टिपूतंन्यसेत्पादंवस्त्रपूतंपिबेज्जलम् ॥
शास्त्रपूतंवदेद्वाक्यंमनःपूतंसमाचरेत् ॥ २ ॥

दोहा—दृष्टि शोधि पग धरिय मग, पीजिय जल पट शोधि ।
शास्त्रशोधि बोलिय वचन, करिय काज मन शोधि ॥२॥

भा० टी०—दृष्टिसे शोधकर पांव रखना उचित है, वस्त्रसे शुद्ध कर जल पीवे, शास्त्रसे शुद्ध कर वाक्य बोले और मनसे सोचकर कार्य करना चाहिये ॥ २ ॥

सुखार्थीचेत्त्यजेद्विद्यांविद्यार्थीचेत्त्यजेत्सुखम् ॥
सुखार्थिनःकुतोविद्यासुखंविद्यार्थिनः कुतः ३ ॥

दोहा–सुख चाहै विद्या तजै, सुख तजि विद्या चाह ।
सुख अर्थिहि विद्या कहां, विद्यार्थिहि सुख काह ॥ ३ ॥

भा० टी०–यदि सुख चाहै तो विद्याको छोड दे, यदि विद्या चाहै तो सुखका त्याग करे, सुखार्थीको विद्या और विद्यार्थीको सुख कैसे होगा ॥ ३ ॥

कवयःकिंनपश्यंति किं न कुर्वंतियोषितः ॥
मद्यपाः किंनजल्पंतिकिंनखादन्तिवायसाः ॥४॥

दोहा–काह न जानै सुकवि जन, करै कहा नहिं नारि ।
मद्यपि कहा न बकिसकै, काग खाहि केहि वारि ॥ ४ ॥

भा० टी०–कवि क्या नहीं देखते, स्त्री क्या नहीं करसकती, मद्यपी क्या नहीं बकते और कौवे क्या नहीं खाते ॥ ४ ॥

रंकं करोति राजानं राजानं रंकमेवच ॥
धनिनं निर्धनं चैव निर्धनं धनिनं विधिः ॥५ ॥

स०–बनवै आति रंकन भूमिपती,अरु भूमिपतीनहुं रंक अती ।
धनिको धनहनि फिरैं करती,अधनी,न धनी विधिकेरि गती ५॥

भा० टी०–निश्चय है कि, विधि रंकको राजा, राजाको रंक, धनीको निर्धन, निर्धनको धनी करदेता है ॥ ५ ॥

लुब्धानांयाचकःशत्रुर्मूर्खाणांबोधकोरिपुः ॥
जारस्त्रीणांपतिःशत्रुश्चौराणांचंद्रमारिपुः ॥ ६ ॥

दोहा–याचक रिपु लोभीनके, मूढन जो शिख दानि ।
जार तियन अरि पति कह्यो, चोरन शशि रिपु जानि ६

भा० टी०–लोभियोंको याचक और मूर्खोंको समझानेवाला और पुंश्चली स्त्रियोंको पति और चोरोंको चन्द्रमा शत्रु है ॥ ६ ॥

येषांनविद्यानतपोनदानं नचापिशीलंनगुणो न धर्मः ॥ ते मृत्युलोके भुविभारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरंति ॥ ७ ॥

दोहा–धर्म शील गुण नाहिं जेहि, नहिं विद्या तप दान ॥
मनुजरूप भुवि भार तेहि, विचरत मृगकरि जान ॥७॥

भा० टी०–जिन लोगोंमें न विद्या है, न तप है, न दान है, न शील है, न गुण है और न धर्म है वे संसारमें पृथ्वीपर भाररूप होकर मनुष्यरूपसे मृगसे फिर रहे हैं ॥ ७ ॥

अन्तःसारविहीनानामुपदेशो न जायते ॥
मलयाचलसंसर्गान्नवेणुश्चंदनायते ॥ ८ ॥

सोरठा–शून्य हृदय उपदेश, नाहिं लगै कैसो करिय ।
बसै मलयगिरिदेश, तऊ बांसमें बास नहिं ॥ ८ ॥

भा० टी०–गम्भीरताविहीन पुरुषोंको शिक्षा देना सार्थक नहीं होता मलयाचलके संगसे बांस चन्दन नहीं होता ॥ ८ ॥

यस्यनास्तिस्वयंप्रज्ञाशास्त्रं तस्य करोतिकिम् ॥
लोचनाभ्यांविहीनस्यदर्पणःकिंकरिष्यति ॥९॥

दोहा–स्वाभाविक नहिं बुद्धि जेहि, ताहि शास्त्र करु काह ।
जो नर नयनविहीन है, दर्पणते का ताह ॥९॥

भा० टी०–जिसको स्वाभाविक बुद्धि नहीं है उसको शास्त्र क्या करसक्ता है जैसे आंखोंसे हीनको दर्पण क्या करेगा ? ॥ ९ ॥

दुर्जनं सज्जनं कर्तुमुपायो नहि भूतले ॥
अपानं शतधा धौतं न श्रेष्ठमिन्द्रियंभवेत् ॥१०

दोहा–दुर्जन सज्जन करनको, भूतल नहीं उपाय ।
है अपान शुचि इन्द्रि नाहिं, सौ सौ धोई जाय ॥१०॥

भा० टी०–दुर्जनको सज्जन करनेके लिये पृथ्वीतलमें कोई उपाय नहीं है, मलके त्याग करनेवाली इंद्रिय सौवारभी धोई जाय तोभी श्रेष्ठ इंद्रिय न होगी ॥ १० ॥

आप्तद्वेषाद्भवेन्मृत्युःपरद्वेषाद्धनक्षयः ॥
राजद्वेषाद्भवेन्नाशोब्रह्मद्वेषात्कुलक्षयः ॥ ११ ॥

दोहा–सतविरोधते मृत्यु मिलु, धनक्षय कीर और द्वेष ।
राजद्वेषते नशत है, कुलक्षय करु द्विज द्वेष ॥ ११ ॥

भा० टी०–बडोंके द्वेषसे मृत्यु, शत्रुके विरोध करनेसे धनका क्षय होता है, राजाके द्वेषसे नाश और ब्राह्मणके द्वेषसे कुलका क्षय होताहै ॥ ११ ॥

वरंवनेव्याघ्रगजेंद्रसेवितेद्रुमालयेपत्रफलांबु-सेवनम् ॥ तृणेषुशय्याशतजीर्णवल्कलंन-बंधुमध्येधनहीनजीवनम् ॥ १२ ॥

छन्द–गज बाघ सेवित वृक्ष घर बन माहि वरु रहिबो करै ।
अरु पत्र फल जल सेवनो तृणसेज बरु लहिबो करै ॥
शतछिद्र वल्कल वस्त्रकरि बहु काल यह गहिबो करै ।
निजबंधुमह धनहीन ह्वै नहिं जीवनो चहिबो करै॥१२॥

भा० टी०–वनमें बाघ और बडे २ हाथियोंसे सेवित वृक्षके नीचेके पत्ता फल खाना वा जलका पीना, घासपर सोना, सौ टुकडेके वल्कलोंको पहिनना ये श्रेष्ठ हैं, पर बन्धुओंके मध्यमें धनहीनका जीना श्रेष्ठ नहीं है ॥ १२ ॥

विप्रोवृक्षस्तस्यमूलंचसंध्यावेदाःशाखाधर्मक-र्माणिपत्रम् ॥तस्मान्मूलंयत्नतोरक्षणीयंछिन्ने मूलेनैवशाखानपत्रम् ॥ १३ ॥

छंद–विप्र वृक्ष है मूल संध्या वेद शाखा जानिये ।
धर्म कर्म हैं पत्र दोऊ मूलको नहिं नाशिये ॥
जो नष्टमूल ह्वै जाय तो कुछ शाख पात न फूटिये ।
यही नीति सुनीति है की मूलरक्षा कीजिये ॥ १३ ॥

भा० टी०–ब्राह्मण वृक्ष है, उसकी जड संध्या है, वेद शाखा हैं और धर्म पत्ते हैं इस कारण प्रयत्न करके जडकी रक्षा करनी चाहिये जड कटजानेपर न शाखा रहेगी और न पत्ते ॥ १३ ॥

**माताचकमलादेवीपितादेवोजनार्दनः ॥
बांधवाविष्णुभक्ताश्वस्वदेशोभुवनत्रयम् ॥१४॥**

दोहा–लक्ष्मी देवी मातु है, पिता विष्णु सर्वेश ।
कृष्णभक्त बंधू सभी, तीन भुवन निजदेश ॥ १४ ॥

भा० टी०–जिसकी लक्ष्मी माता है और विष्णु भगवान् पिता है और विष्णुके भक्त बांधव हैं उसको तीनों लोक स्वदेशही है ॥ १४ ॥

**एकवृक्षसमारूढानानावर्णाविहंगमाः ॥
प्रभातेदिक्षुदशसुयांतिकापरिदेवना ॥ १५ ॥**

दोहा-बहुविधि पक्षी एक तरु, जो बैठे निशि आय ।
भोर दशोंदिशि उडि चले, वह कोही पछिताय ॥१५॥
भा० टी०-नानाप्रकारके पखेरू एक वृक्षपर बैठते हैं, प्रभात समय दशों दिशामें होजाते हैं उसमें क्या शोच है ॥ १५ ॥

बुद्धिर्यस्यबलंतस्य निर्बुद्धेश्च कुतोबलम् ॥
वनेसिंहोमदोन्मत्तोजंबुकेननिपातितः ॥१६॥

दोहा-बुद्धि जासु है सो बली, निर्बुधिके बल नाहिं ।
अतिबल सिंहहि स्यार लघु, चतुर हतोसि वनमाहिं॥१६॥
भा० टी०-जिसको बुद्धि है उसको बल है निर्बुद्धिको बल कहासे होगा, देखो वनमें मदसे उन्मत्त सिंह सियारसे मारा गया ॥ १६॥

काचिन्ताममजीवनेयदिहरिर्विश्वंभरोगीयते ।
नोचेदर्भकजीवनायजननीस्तन्यंकथंनिःसरेत् ॥
इत्यालोच्यमुहुर्मुहुर्यदुपतेलक्ष्मीपतेकेवलं ।
त्वत्पादांबुजसेवनेनसततंकालोमयानीयते १७॥

छन्द-है नाम हरीको जगपालक मन जीवन शंका क्यों करनी ।
नहीं तो बालकजीवनको तनुसे पय निसरत क्यों जननी ॥
यही जानकर बार बार हे यदुपति लक्ष्मीपति तेरे ।
चरणकमलके सेवनसे दिन बीते जायँ सदा मेरे ॥१७॥

भा० टी०--मेरे जीवनमें क्या चिंता है यदि हरि विश्वका पालने- वाला कहलाता है, ऐसा न हो तो बच्चोंके जीनेके हेतु माताके स्तनमें दूध कैसे बनाते, इसको वारंवार विचार करके हे यदुपति ! हे लक्ष्मीपति ! सदा केवल आपके चरणकमलकी सेवासे मैं समयको बिताता हूँ ॥ १७ ॥

गीर्वाणवाणीषु विशिष्टबुद्धिस्तथापि भाषा-न्तरलोलुपोऽहम् ॥ यथासुराणाममृतेच्च सेविते स्वर्गांगनानामधरासवे रुचिः ॥ १८ ॥

सोरठा–देववैन बुद्धि बेस, तऊ और भाषा चहौं ।
यदपि सुधा सुर देश, चहैं अपसरन अधररस ॥ १८ ॥

भा० टी०–यद्यपि संस्कृत भाषामेंही विशेष ज्ञान है तथापि दूसरी भाषाका भी लोभी हूं जैसे अमृतके रहते भी देवताओंकी इच्छा स्वर्गकी स्त्रियोंके ओष्ठके आसवमें रहती है ॥ १८ ॥

अन्नाद्दशगुणंपिष्टंपिष्टाद्दशगुणंपयः ॥
पयसोऽष्टगुणंमांसंमांसाद्दशगुणंघृतम् ॥ १९ ॥

दोहा--चून दशगुणों, अन्नते, ता दश गुण पय जान ।
पयसे अठगुण मांस है, तेहि दशगुण घृत मान ॥ १९ ॥

भा० टी०—चावलसे दशगुणा पिसान (चून) में गुण है, पिसानसे दशगुणा दूधमें, दूधसे आठगुणा मांसमें, मांससे दशगुणा घीमें॥१९॥

शाकेनरोगावर्धन्तेपयसावर्धतेतनुः ॥
घृतेनवर्धतेवीर्यंमांसान्मांसंप्रवर्धते ॥ २० ॥

दोहा—रोग बढत है शाकते, पयसे बढत शरीर ।
घृत खाये बीरज बढै, मांस मांस गंभीर ॥ २० ॥

भा० टी०—शाकसे रोग, दूधसे शरीर, घीसे वीर्य और मांससे मांस बढता है ॥ २० ॥

इति वृद्धचाणक्ये दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः ११.

दातृत्वंप्रियवक्तृत्वंधीरत्वमुचितज्ञता ॥
अभ्यासेननलभ्यन्तेचत्वारःसहजागुणाः ॥ १ ॥

दोहा—दानशक्ति प्रिय बोलबो, धीरज उचित विचार ।
ये गुण सीखे ना मिलैं, स्वाभाविक हैं चार ॥ १ ॥

भा० टी०—उदारता, प्रिय बोलना, धीरता और उचितका ज्ञान ये अभ्याससे नहीं मिलते ये चारों स्वाभाविक गुण हैं ॥ १ ॥

आत्मवर्गंपरित्यज्यपरवर्गंसमाश्रयेत् ॥
स्वयमेवलयंयातियथाराज्यमधर्मतः ॥ २ ॥

दोहा-वर्ग आपनो छोडिके, गहे वर्ग जो आन ।
सो आपुइ नशि जात है, राज्य अधर्म समान ॥ २ ॥

भा॰ टी॰-जो अपनी मण्डलीको छोड परके वर्गका आश्रय लेता है वह आपही लयको प्राप्त होजाताहै जैसे राजाके अधर्मसे राज्य ॥२॥

हस्तीस्थूलतनुःसचांकुशवशःकिंहस्तिमा-
त्रोंऽकुशोदीपेप्रज्वलितेप्रणश्यतितमः किं
दीपमात्रंतमः । वज्रेणापि हताः पतन्ति
गिरयःकिंवज्रमात्रानगास्तेजोयस्यविराज-
तेसबलवान्स्थूलेषुकःप्रत्ययः ॥ ३ ॥

स॰-भारी करी रहे अंकुशके वशका वह अंकुशभारी करीसों ।
त्यों तमपुंजहि नाशतदीपसो दीपकहू अंधियारसरीसों ॥
वज्रके मारे गिरै गिरिहू कहुं होय भला वह वज्रागिरीसों ।
तेज है जासु सोई बलवान कहाविशवासशरीरबरीसों॥३॥

भा॰ टी॰-हाथीका स्थूल शरीर है वहभी अंकुशके वश रहता है तो क्या हस्तीके समान अंकुशहै, दीपके जलनेपर अन्धकार आपही

नष्ट होजाता है, तो क्या दीपके तुल्य तम है ? बिजुलीके मारे पर्वत गिरजाते हैं, तो क्या बिजुली पर्वतके समान है ? जिसमें तेज विराजमान रहता है वह बलवान् गिना जाता है मोटेका कौन विश्वास है ॥ ३ ॥

कलौदशसहस्राणिविष्णुस्त्यक्ष्यतिमेदिनीम् ॥
तदर्द्धंजाह्नवीतोयं तदर्द्धंग्रामदेवताः ॥ ४ ॥

दोहा–दश हजार बीते बरस, कलिमें तजि हरि देहि ।
तासु अर्द्ध सुरनदी जल, ग्रामदेव अधि तेहि ॥ ४ ॥

भा० टी०–कलियुगमें दशसहस्र वर्षके बीतनेपर विष्णु पृथ्वीको छोड देते हैं उसके आधेपर गंगाजी जलको, तिसके आधेके बीतनेपर ग्रामदेवता ग्रामको ॥ ४ ॥

गृहासक्तस्यनोविद्यानोदयामांसभोजिनः ॥
द्रव्यलुब्धस्यनोसत्यंस्त्रैणस्यनपवित्रता ॥ ५ ॥

दोहा–विद्या गृह आसक्तको, दया मांस जे खाहिं ।
लुब्धहि सतता हो नहीं, जारहि शुचिता नाहिं ॥ ५ ॥

भा० टी०–गृहमें आसक्त पुरुषोंको विद्या, मांसके आहारीको दया द्रव्यके लोभीको सत्यता और व्यभिचारीको पवित्रता नहीं होती॥५॥

न दुर्जनः साधुदशामुपैति बहुप्रकारैरपि

शिक्ष्यमाणः ॥ आमूलसिक्तःपयसाघृतेन ननिंबवृक्षोमधुरत्वमेति ॥ ६ ॥

दोहा–साधुदशाको नहिं लहैं, दुर्जन बहु शिख पाय ।
दूध घीवसे सींचये, नींब न तदपि मिठाय ॥ ६ ॥

भा० टी०–निश्चय है कि, दुर्जन अनेक प्रकारसे सिखलाया भी जाय, पर उसमें साधुता नहीं आती, दूध और घीसे मूलसे पल्लवपर्यन्त नींबका वृक्ष सींचाभी जाय पर इसमें मधुरता नहीं आती ॥ ६ ॥

अन्तर्गतमलोदुष्टस्तीर्थस्नानशतैरपि ॥ नशुध्यतियथाभांडंसुरायादाहितंचतत् ॥ ७ ॥

दोहा–मनमलीन खल तीर्थमें, यदि सौ बार नहाहिं ।
होय शुद्ध नहिं जिमि सुरा, बासन दीनहु दाहि ॥ ७ ॥

भा० टी०–जिसके हृदयमें पाप है वही दुष्ट है, वह तीर्थमें सौवार स्नानसेभी शुद्ध नहीं होता, जैसे मदिराका पात्र जलायाभी जाय तौभी शुद्ध नहीं होता ॥ ७ ॥

नवेत्तियोयस्यगुणप्रकर्षंसतंसदानिन्दतिनात्र चित्रम् ॥ यथाकिरातीकरिकुंभलब्धांमुक्तां परित्यज्यविभर्तिगुंजाम् ॥ ८ ॥

चा० छं०–जो न जानु उत्तमत्व जाहिके गुणानकी।
निन्दतो सो ताहितो अचर्ज कौन खानकी॥
ज्यों किराति हाथिमाथ मोतियां विहायकै।
घूंघची पहीनती विभूषणै बनायके॥ ८॥

भा० टी०--जो जिसके गुणकी प्रकर्षता नहीं जानता वह निरंतर उसकी निंदा करता है, जैसे भिल्लिनी हाथीके मस्तकके मोतीको छोड घुघुँचीको पहिनती है॥ ८॥

येतुसंवत्सरंपूर्णंनित्यंमौनेनभुञ्जते॥
युगकोटिसहस्रान्ते पूज्यंतेस्वर्गविष्टपे॥ ९॥

दोहा–जो पूरे इक वरसभर, मौनधार नित खात।
युगकोटिनके सहसतक, स्वर्गमाहिं पुजि जात॥ ९॥

भा० टी०--जो वर्षभर नित्य चुपचाप भोजन करता है वह सहस्र-कोटि युग स्वर्गलोकमें पूजा जाता है॥ ९॥

कामक्रोधौतथालोभंस्वादुशृंगारकौतुके॥
अतिनिद्रातिसेवेचविद्यार्थीह्यष्टवर्जयेत्॥ १०॥

सोरठा–काम क्रोध अरु स्वाद, लोभ शृंगारहि कौतुकाहिं।
अतिसेवा निद्राहि, विद्यार्थी आठों तजै॥ १०॥

भा० टी०–काम, क्रोध, लोभ, मीठी वस्तु, शृङ्गार, खेल, अति निद्रा और अतिसेवा इन आठोंको विद्यार्थी छोड देवे॥ १०॥

अकृष्टफलमूलानि वनवासरतिः सदा ॥
कुरुतेऽहरहःश्राद्धमृषिर्विप्रः स उच्यते ॥ ११ ॥

दोहा–बिनु जोते महि फूल फल, खाय रहे वन माहिं ।
श्राद्ध करै जो प्रति दिवस, कहिय विप्र ऋषि ताहिं ११

भा० टी०–विना जोती भूमिसे उत्पन्न फल वा मूलको खाकर सदा वनवास करता हो और प्रतिदिन श्राद्ध करे ऐसा ब्राह्मण ऋषि कहलाता है ॥ ११ ॥

एकाहारेणसंतुष्टःषट्कर्मनिरतः सदा ॥
ऋतुकालाभिगामीचसविप्रोद्विजउच्यते ॥ १२॥

सोरठा–एकैबार अहार, तुष्ट सदा षट्कर्म रत ।
ऋतुमें प्रिया विहार, करै विप्र सो द्विज अहै ॥ १२ ॥

भा० टी०एक समयके भोजनसे संतुष्ट रहकर पढना, पढाना, यज्ञ करना, कराना, दान देना और लेना इन छः कामोंमें सदा रत हो और ऋतुकालमें स्त्रीका सङ्ग करे तो ऐसे ब्राह्मणको द्विज कहते हैं ॥ १२ ॥

लौकिकेकर्मणिरतः पशूनांपरिपालकः ॥
वाणिज्यकृषिकर्मा यःसविप्रोवैश्यउच्यते १३ ॥

सो०–निरत लोकके कर्म, पशुपालै वानिज करै।
खेतीमें मन पर्ग, करे विप्र सो वैश्य है ॥ १३ ॥

भा० टी०–सांसारिक कर्ममें रत हो और पशुओंका पालन, बनियाई और खेती करनेवाला हो वह विप्र वैश्य कहलाता है ॥ १३ ॥

लाक्षादितैलनीलीनांकौसुम्भमधुसर्पिषाम् ॥
विक्रेतामद्यमांसानांसविप्रःशूद्रउच्यते ॥ १४ ॥

सो०–लाखआदि मद मांसु, घीव कुसुम अरु नील मधु।
तैल बेचियत तासु, शूद्र जानिये विप्र यादि ॥ १४ ॥

भा० टी०–लाख आदि पदार्थ, तेल, नीली, कुसुम, मधु, घी, मद्य और मांस जो इसको बेचनेवाला हो वह ब्राह्मण शूद्र कहा जाता है ॥ १४ ॥

परकार्यविहन्ताचदांभिकःस्वार्थसाधकः ॥
छलीद्वेषीमृदुः क्रूरो विप्रोमार्जारउच्यते ॥१५॥

सोरठा–दंभी स्वारथ शूर, पर कारज घाले छली।
द्वेषी कोमल क्रूर, विप्र बिलार कहावतो ॥ १५ ॥

भा० टी०–दूसरेके कामका विगाडनेवाला, दम्भी, अपनेही अर्थको साधनेवाला, छली, द्वेषी, ऊपर मृदु और अन्तःकरणमें कडा हो तो वह ब्राह्मण बिलार कहाजाता है ॥ १५ ॥

वापीकूपतडागानामारामसुरवेश्मनाम् ॥
उच्छेदनेनिराशंकःसविप्रोम्लेच्छउच्यते ॥१६॥

सो०-कूप बावली बाग, औ तडाग सुरमन्दिरहि ।
नाशेमें भय त्याग, मलिछ कहावै विप्र सो ॥ १६ ॥

भा० टी०-बावली, कुवा, तालाब, वाटिका, देवालय इनके उच्छेद करनेमें जो निडर हो वह ब्राह्मण म्लेच्छ कहलाता है ॥ १६ ॥

देवद्रव्यंगुरुद्रव्यंपरदाराभिमर्शनम् ॥
निर्वाहःसर्वभूतेषुविप्रश्चाण्डालउच्यते ॥ १७ ॥

सो०-परनारीरत जोय, जो सुर गुरुधनको हरै ।
द्विज चंडाल सो होय, सबमें करु निर्वाह जो ॥ १७ ॥

भा० टी०-देवताका द्रव्य और गुरुका द्रव्य जो हरता है और परस्त्रीसे संग करता है और सब प्राणियोंमें निर्वाह करलेता है वह विप्र चांडाल कहलाता है ॥ १७ ॥

देयंभोज्यधनं धनं सुकृतिभिर्नोसञ्चयस्तस्यवै श्रीकर्णस्यबलेश्चविक्रमपतेरद्यापि कीर्तिः स्थिता । अस्माकं मधुदानभोगरहितं नष्टं चिरात्सञ्चितं निर्वाणादिति नैजपादयुगलं घर्षन्त्यहो मक्षिकाः ॥ १८ ॥

स०–मतिमानकोचाहियेकीधनभोजनसंचहिंनाहिंदियोईकरैं ।
यहितेबालिविक्रमकर्णहुकीरतिआजुलौंलोगकह्योईकरैं ॥
चिरसंचिमधूहमलोगनकीविनुभोगेदियेनासिबोईकरैं ।
यहजानिभयेमधुनाशदोऊमधुमाखियांपांवघिसोईकरैं १८॥

भा० टी०–सुकृतियोंको चाहिये कि, भोगयोग्य धनको और द्रव्यको देवें कभी न संचय करें क्योंकि कर्ण, बालि, विक्रमादित्य इन राजाओंकी कीर्ति इस समय पर्यन्त वर्तमान है दान भोगसे रहित बहुत दिनसे संचित हमारे लोगोंका मधु नष्ट हो गया, ऐसा देखकर मधुमक्खियां मधुके नाश होनेके कारण अपने दोनों पाओंको घिसा करती हैं ॥१८॥

इति वृद्धचाणक्ये एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः १२.

सानन्दंसदनंसुतास्तुसुधियःकान्ताप्रियाला-
पिनीइच्छापूर्तिधनंस्वयोषितिरतिःस्वाज्ञाप-
राःसेवकाः ॥ आतिथ्यंशिवपूजनंप्रतिदिनं
मिष्टान्नपानं गृहे साधोः संगमुपासतेचसततं
धन्यो गृहस्थाश्रमः ॥ १ ॥

स०--सानँद मंदिर पंडित पूत सुबोल रहै पुनि प्राणपियारी ।
इच्छित संपति पूरि स्वतीयरती रहै सेवक भौंहनिहारी ॥
आतिथ औ शिवपूजन रोज रहै घर संचय सुअन्न औवारी।
साधुन संग उपासतहै नित धन्य अहै गृह आश्रमधारी १

भा० टी०--यदि आनन्दयुत घर मिले और लडके पंडित हों, स्त्री मधुरभाषिणी हो, इच्छाके अनुसार धन हो, अपनी ही स्त्रीमें रति हो, आज्ञापालक सेवक मिलें, अतिथिकी सेवा और शिवकी पूजा हो, प्रतिदिन गृहमें मीठा अन्न और जल मिले, सर्वदा साधुके संगकी उपासना, तो यह गृहस्थाश्रमही धन्य है ॥ १ ॥

आर्तेषुविप्रेषुदयान्वितश्चयच्छ्रद्धयास्वल्पमु-
पैति दानम् ॥ अनन्तपारं समुपैतिराजन्
यद्दीयते तन्न लभेद्द्विजेभ्यः ॥ २ ॥

दोहा--दिय श्रद्धा रु दयासँयुत, आरत विप्रहिं जौन ।
थोरो मिलै अनंत ह्वै, उतनो ही नाहिं तौन ॥ २ ॥

भा० टी०--जो दयावान् पुरुष आर्त ब्राह्मणोंको श्रद्धासे थोडाभी दान देता है उस पुरुषको अनन्त होकर वह मिलता है, न कि जो ब्राह्मणोंको दिया जाता है उतनाही मिलता है ॥ २ ॥

दाक्षिण्यंस्वजनेदयापरजनेशाठ्यंसदादुर्जने

प्रीतिःसाधुजनेस्मयःखलजनेविद्वज्जनेचार्जवम् ॥
शौर्यंशत्रुजनेक्षमागुरुजनेनारीजनेधूर्तता इत्थंये
पुरुषाःकलासुकुशलास्तेष्वेवलोकस्थितिः॥३॥

कवित्त–दक्षता स्वजनबीच दया परजनबीच शठता सदाही
रहे बीचदुरजनको। प्रीतिसाधुजनमें खलनमाहिं अभि-
मान सरलस्वभाव रहै बीच पंडितनके॥ शत्रुनमें शूरता
सयाननमें क्षमा पूर धूरताई राख फेर बिचि नारी-
जनके। ऐसे सब कलामें कुशल रहैं जेते लोग लोक
तिथि रहि रहै बीच तिनहिनके ॥ ३ ॥

भा० टी०–अपने जनमें दक्षता, दूसरे जनमें दया, दुर्जनमें सदा दुष्टता, साधुजनमें प्रीति, खलमें अभिमान, विद्वानोंमें सरलता, शत्रुजनमें शूरता, बडे लोगोंके विषयमें क्षमा, स्त्रीसे काम पडनेपर धूर्तता इस प्रकारसे जो लोग कलामें कुशल होते हैं उन्हींमें लोककी मर्यादा रहती है ॥ ३ ॥

हस्तौदानविवर्जितौश्रुतिपुटौसारस्वतद्रोहिणौ
नेत्रेसाधुविलोकनेनरहितेपादौ न तीर्थं गतौ ।
अन्यायार्जितवित्तपूर्णमुदरंगर्वेणतुङ्गंशिरो रेरे
जम्बुकमुञ्चमुञ्चसहसानीचंसुनिन्द्यं वपुः ॥ ४॥

ह० छं०-यह पाणि दानविहीन कान पुरान वेद सुने नहीं ।
अरु आंखि साधुन दर्शहीन न पांव तीरथ गे कहीं ॥
अनियाय वित्त भरो सुपेट उठ्यो शिरा अभिमानहीं ।
वपु नीच निंदित छोडु छोडु अरे सियार सो वेगहीं ॥४॥

भा० टी०-हाथ दानरहित हैं, कान वेदशास्त्रके विरोधी हैं, नेत्रोंने साधुका दर्शन नहीं किया, पांवने तीर्थगमन नहीं किया, अन्यायसे अर्जित धनसे उदर भरा है और गर्वसे शिर ऊँचा होरहा है, रे रे सियार ऐसे नीच निंद्य शरीरको शीघ्र छोड ॥ ४ ॥

येषांश्रीमद्यशोदासुतपदकमले नास्ति भक्ति-र्नराणां येषामाभीरकन्याप्रियगुणकथनेनानुर-क्तारसज्ञा ॥ येषां श्रीकृष्णलीलाललितरसक-थासादरौनैवकर्णौधिक्तान्धिक्तान्धिगेतान्कथ-यति सततं कीर्तनस्थो मृदंगः ॥ ५ ॥

छंद-जो नर यशुमतिसुतचरणनमें भक्ति हृदयसे नहिं रखते ।
जो राधाप्रिय कृष्णचन्द्रके गुण जिह्वासे नहीं रटते ॥
जिनकेदोउकाननमाहिंकथारसकृष्णचन्द्रके नहिं गिरते ।
कीर्तनमाहिंमृदंगइन्हें धिक् धिक्अपनीध्वनिसे कहते ॥

भा० टी०—श्रीयशोदासुतके पदकमलमें जिन लोगोंकी भक्ति नहीं रहती, जिन लोगोंकी जीभ अहीरोंकी कन्याओंके प्रियके अर्थात् श्रीकृष्णके गुणगानमें प्रीति नहीं रखती और श्रीकृष्ण-जीकी लीलाकी ललीत कथाका आदर जिनके कान नहीं करते, उन लोगोंको धिक् है धिक् है धिक् ऐसे कीर्तनका मृदंग सदा कहता है ॥ ५ ॥

पत्रंनैवयदाकरीरविटपे दोषो वसन्तस्य किं नोलूकोप्यवलोकतेयदिदिवासूर्यस्यकिं दूष-णम् । वर्षानैवपतेत्तुचातकमुखे मेघस्यकिं दूषणं यत्पूर्वं विधिनाललाटलिखितं तन्मा-र्जितुं कः क्षमः ॥ ६ ॥

स०—पात न होय करीलनमें यदि, दोष वसन्तहि कौन तहां है ।
त्यों जब देखि सके न उलूक, दिनै तहँ सूरजदोष कहां है ॥
चातक आनन बूँद परै नहिं, मेघन दूषण कौन वहां है ।
जो कुछ पूरब माथलिखा विधि मेटनको समरत्थ कहां है ॥

भा० टी०—यदि करीलके वृक्षमें पत्ते नहीं होते तो वसन्तका क्या अपराध है ? यदि उलूक दिनमें नहीं देखता तो सूर्यका क्या दोष है ? वर्षा चातकके मुखमें नहीं पडती इसमें मेघका क्या अप-राध है ? पहिलेही ब्रह्माने जो कुछ ललाटमें लिख रक्खा है उसे मिटानेको कौन समर्थ है ॥ ६ ॥

सत्संगाद्भवतिहिसाधुताखलानां साधूनां नहि खलसंगतः खलत्वम् । आमोदंकुसुमभवं मृदेव धत्ते मृद्गन्धं नहि कुसुमानि धारयंति ॥ ७ ॥

व०ति०—सत्संगसों खलहु साधु स्वभाव सेवैं ।
साधू न दुष्टपन संग परेउ लेवैं ।
माटीहि वास कछु फूलन केरि पावै ।
माटीसुवास कहुँ फूल नहीं बसावै ॥ ७ ॥

भा० टी०—निश्चय है कि, अच्छेके संगसे दुर्जनोंमें साधुता आजाती है, परन्तु साधुओंमें दुष्टोंकी संगतिसे असाधुता नहीं आती, फूलके गंधको मट्टी लेलेती है, पर मट्टीके गन्धको फूल कभी नहीं धारण करते ॥ ७ ॥

साधूनांदर्शनंपुण्यंतीर्थभूताहिसाधवः ॥
कालेनफलतेतीर्थं सद्यः साधुसमागमः ॥ ८ ॥

दोहा—साधूदर्शन पुण्य हैं, साधु तीर्थके रूप ।
काल पाय तीरथ फलैं, तुरतहि साधु अनूप ॥ ८ ॥

भा० टी०—साधुओंका दर्शनही पुण्य है इस कारण कि साधु तीर्थ रूप हैं समयसे तीर्थ फल देता है, साधुओंका संग शीघ्रही काम करदेता है ॥ ८ ॥

विप्रास्मिन्नगरे महान्कथय कस्तालद्रुमाणां गणः को दाता रजकोददातिवसनंप्रातर्गृही-त्वानिशि। कोदक्षः परवित्तदारहरणे सर्वोऽपि दक्षो जनः कस्माज्जीवसि हेसखे विषकृमि-न्यायेन जीवाम्यहम् ॥ ९ ॥

कवित्त–कहो या नगरमें महान कौन ! विप्र ! तौन तारनके वृक्षके कतारक कतार हैं ! दाता कहो कौन है ? रजक देत सांझ आनि धोय शुभ्र वस्त्रनको लेत जो सकार है ॥ दक्ष कहौ कौन है ? प्रत्यक्ष सबही हैं दक्ष हरने-को कुशल परायो धनदार हैं । कैसे तुम जीवत बताय कहो मोसों मीत विषकृमिन्याय करलीजे निरधार है ॥ ९ ॥

भा० टी०–हे विप्र ! इस नगरमें कौन बडा है ताडके पेडोंका समुदाय, कौन दाता है ? धोबी प्रातःकाल वस्त्र लेता है रात्रिमें देदेता है, चतुर कौन है ? दूसरेके धन और स्त्रीके हरणमें सबही कुशल हैं, तो ऐसे नगरमें आप कैसे जीते हो ? हे मित्र ! विषका कीडा विषहीमें जीता है वैसेही मैं भी जीताहूँ ॥ ९ ॥

न विप्रपादोदककर्दमानि नवेदशास्त्रध्वनि-गर्जितानि ॥ स्वाहास्वधाकारविवर्जितानि श्मशानतुल्यानिगृहाणि तानि ॥ १० ॥

दोहा—विप्रचरणके उदकसे, होत जहां नहिं कीच ।
वेद ध्वनि स्वाहा नहीं, वे गृह मर्घट नीच ॥ १० ॥

भा० टी०—जिन घरोंमें ब्राह्मणोंके पांवोंके जलसे कीचड न भया हो और न वेदशास्त्रके शब्दकी गर्जना, और जो गृह स्वाहा स्वधासे रहित हों उनको श्मशानके समान समझना चाहिये ॥ १० ॥

सत्यंमातापिताज्ञानंधर्मोभ्रातादयासखा ॥ शांतिः पत्नी क्षमा पुत्रः षडेतेममबांधवाः ॥ ११ ॥

सो०—सत्य मातु पितु ज्ञान, सखा दया भ्राता धरम ।
तिया शान्ति सुत जान, क्षमा यही षट्बन्धु मम ॥ ११ ॥

भा० टी०—सत्य मेरी माता है और ज्ञान पिता है धर्म मेरा भाई है और दया मित्र, शांति मेरी स्त्री है और क्षमा पुत्र येही छः मेरे बन्धु हैं किसी संसारी पुरुषने ज्ञानीको देखकर चकित हो पूछा कि संसारमें माता, पिता, भाई, मित्र, स्त्री, पुत्र ये जितनाही अच्छेसे अच्छे हों उतनाही संसारमें आनन्द होता है, तुझको परम

आनन्दमें मग्न देखता हूँ तो तुझको भी कहीं न कहीं कोई उन-मेंसे होगा ज्ञानीने समझा कि जिस दशाको देखकर यह चकित है वह दशा क्या सांसारिक कुटम्बोंसे होसक्ती है इस कारण जिनसे मुझे परम आनन्द होताहै इन्हींको इससे कहूँ कदाचित् यह भी इनको स्वीकार करे ॥ ११ ॥

अनित्यानिशरीराणिविभवोनैवशाश्वतः ॥
नित्यंसन्निहितोमृत्युः कर्तव्योधर्मसंग्रहः ॥१२॥

सोरठा–है अनित्य यह देह, बिभव सदा नाहिंन रहै ।
निकट मृत्यु नित येह, चहिय कीह्न संग्रह धरम ॥१२॥

भा० टी०–शरीर अनित्य है, विभवभी सदा नहीं रहता, मृत्यु सदा निकट ही रहता है इस कारण धर्मका संग्रह करना चाहिये ॥१२॥

निमन्त्रणोत्सवाविप्रागावोनवतृणोत्सवाः ॥
पत्युत्साहयुताभार्या अहंकृष्णरणोत्सवः ॥१३॥

दोहा–नेवतन द्विजको है हरी, गौवनको नवघास ।
पति उत्सव युवतीनको, मोहिं उत्सव रणखास ॥१३॥

भा० टी०–निमन्त्रण ब्राह्मणोंका उत्सव है और नवीन घास गौओंका उत्सव है, पतिके उत्साहसे स्त्रियोंका उत्साह होताहै हे कृष्ण ! मुझको रणही उत्सव है ॥ १३ ॥

मातृवत्परदारांश्चपरद्रव्याणिलोष्टवत् ॥
आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति १४॥

दोहा—परधन माटीके सरिस, परतिय माता लेख ।
आपुसरीखे जगत् सब, जो देखे सो देख ॥ १४ ॥

भा० टी०—दूसरेकी स्त्रीको माताके समान, दूसरेके द्रव्यको ढेलाके समान और अपने समान सब प्राणियोंको जो देखता है वही देखता है ॥ १४ ॥

धर्मेतत्परतामुखे मधुरतादाने समुत्साहता
मित्रेऽवञ्चकतागुरौविनयताचित्तेऽतिगम्भीरता॥
आचारेशुचितागुणेरसिकताशास्त्रेषुविज्ञातृता
रूपेसुन्दरताशिवेभजनतात्वय्यस्तिभोराघव१५

कवित्त—धर्म माहिं रुचि मुख मीठी बानि दानबिच शक्ति मित्र संग नाहिं ठगनेकी बानि है । वृद्धनमें नम्रता रु मनमें गंभीरता है शुद्ध है आचार गुण विचार सज्ञान है ॥ शास्त्रको विशेष ज्ञान रूप हू सुहावनो है शिव-जूके भजनको सब काल ध्यान है । कहे पुष्पवंत ज्ञानी राघो बीच जानो सब और इकठौर कहिं इनको न भान है ॥ १५ ॥

भा० टी०–धर्ममें तत्परता, मुखमें मधुरता, दानमें उत्साहता, मित्रके विषयमें निश्चलता, गुरुसे नम्रता, अन्तःकरणमें गभीरता, आचारमें पवित्रता, गुणमें रसिकता, शास्त्रोंमें विशेषज्ञान, रूपमें सुन्दरता और शिवकी भक्ति, हे राघव! ये आपहीमें हैं ॥ १५ ॥

काष्ठं कल्पतरुः सुमेरुरचलश्चिन्तामणिः प्रस्तरःसूर्यस्तीव्रकरःशशीक्षयकरःक्षारो हिवारांनिधिः ॥ कामोनष्टतनुर्बलिर्दिति-सुतो नित्यं पशुःकामगौर्नैतांस्तेतुलया-मिभोरघुपतेकस्योपमादीयते ॥ १६ ॥

कवित्त–कल्पवृक्ष काठ अरु अचल सुमेरु अहै चिंतामणि रत्नहू पषाण जाति जानिये । सूरजमें उष्णता रु कलाहीन चंद्रमा सो सागरहु जल महाखारी यह जानिये ॥ कामदेव नष्टतनु अरु राजा बली दैत्यसुत कामधेनु गौकी पशु जाति मानिये । उपमा श्रीराम-जूकी इनसे कछू ना तुलै और कौन वस्तु जासे उपमा बखानिये ॥ १६ ॥

भा० टी०–कल्पवृक्ष काठ है, सुमेरु अचल है, चिंतामणि पत्थर है, सूर्यकी किरण अत्यन्त उष्ण हैं, चन्द्रमाकी किरण क्षीण होजाती हैं,

समुद्र खारा है, कामको शरीर नहीं है, बालि दैत्य है, कामधेनु सदा पशुही है, इस कारण आपके साथ इनकी तुलना नहीं देसक्ते हैं हे रघुपति ! फिर आपको किसकी उपमा दीजाय ॥ १६ ॥

विद्यामित्रं प्रवासे च भार्यामित्रंगृहेषु च ॥
व्याधितस्यौषधं मित्रंधर्मोमित्रं मृतस्यच ॥ १७॥

दोहा–विद्या मित्र विदेशमें, घरमें नारी मित्र ।
रोगिहि औषध मित्र है, मरे धर्म है मित्र ॥ १७ ॥

भा० टी०–प्रवासमें, विद्या हित करती है, घरमें स्त्री मित्र है, रोग-ग्रस्त पुरुषका हित औषध होताहै और धर्म मरेका उपकार करता है१७

विनयंराजपुत्रेभ्यःपंडितेभ्यःसुभाषितम् ॥
अनृतंद्यूतकारेभ्यः स्त्रीभ्यःशिक्षेतकैतवम् १८॥

दोहा–राजसुतनसे विनय अरु, बुधसे सुन्दर बात ।
झूठ जुवारिनसे कपट, स्त्रियोंसे सीखी जात ॥ १८ ॥

भा० टी०–सुशीलता राजाके लडकोंसे, प्रियवचन पंडितोंसे असत्य जुआँरियोंसे और छल स्त्रियोंसे सीखना चाहिये ॥ १८ ॥

अनालोक्यव्ययंकर्ताअनाथःकलहप्रियः ॥
आतुरःसर्वक्षेत्रेषुनरःशीघ्रं विनश्यति ॥ १९ ॥

दोहा-बिनु विचार खर्चा करै, झगरे विनहि सहाय ।
आतुर सब तियमों रहै, सो नर वेगि नशाय ॥ १९ ॥

भा० टी०-विना विचारे व्यय करनेवाला, सहायकके न रहनेपरभी कलहमें प्रीति रखनेवाला और सब जातिकी स्त्रियोंमें भोगके लिये व्याकुल होनेवाला पुरुष शीघ्रही नष्ट होता है ॥ १९ ॥

नाहारंचिंतयेत्प्राज्ञो धर्ममेकंहिचिंतयेत् ॥
आहारोहिमनुष्याणां जन्मनासहजायते ॥२०॥

दोहा-नहिं अहार चिंतहि सुमत, चिंतहि धर्महि एक ।
होहिं साथही नरनके, नरहिं आहार अनेक ॥ २० ॥

भा० टी०-पंडितको आहारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये एक धर्मको निश्चयसे शोचना चाहिये इस हेतु कि आहार मनुष्योंको जन्मके साथही उत्पन्न होता है ॥ २० ॥

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणे तथा ॥
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जःसुखीभवेत्॥२१॥

दोहा-लेन देन धन अन्नके, विद्या पढने माहिं ।
भोजन सभा विवादमें, तजै लाज सुख माहिं ॥ २१ ॥

भा० टी०-धनधान्य व्यवहार करनेमें, वैसेही विद्याके पढने पढानेमें, आहारमें और राजाकी सभामें, किसीके साथ विवाद करनेमें जो लज्जाको छोडे रहेगा वही सुखी होगा ॥ २१ ॥

जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यतेघटः ॥
सहेतुःसर्वविद्यानांधर्मस्यचधनस्यच ॥ २२ ॥

दोहा–एक एक जलबूँदके, परते घट भरिजाय ।
सब विद्या धन धर्मको, कारण यही कहाय ॥ २२ ॥

भा० टी०–क्रमसे जलके एक २ बून्दके गिरनेसे घडा भरजाता है यही सब विद्या धर्म और धनकाभी कारण है ॥ २२ ॥

वयसःपरिणामेऽपियःखलःखलएव सः ॥
संपक्वमपिमाधुर्यंनोपयातीन्द्रवारुणम् ॥ २३ ॥

दोहा–बीति गयेहू उमिरिके, खल खलही रहिजाय ।
पकेहु मिठाई गुण कहीं, नाहिं न वारुण पाय ॥ २३ ॥

भा० टी०–जो खल रहता है सो वयके परिणाम परभी खलही बनारहताहै । अत्यन्त पकीभी तिक्त लौकी मीठी नहीं होती ॥२३॥

इति वृद्धचाणक्ये द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः १३.

मुहूर्तमपिजीवेच्चेन्नरःशुक्लेनकर्मणा ॥
नकल्पमपिकष्टेनलोकद्वयविरोधिना ॥ १ ॥

दोहा–बरु नर जिवै मुहूर्त्तभर, करिके शुचि सत्कर्म ।
नहिं भरि कलपहु लोक दुहुँ, करत विरोध अधर्म ॥ १ ॥

भा० टी०–उत्तम कर्मसे मनुष्योंको मुहूर्तभरका जीनाभी श्रेष्ठ है, दोनों लोकोंके विरोधी दुष्टकर्मसे कल्पभरकाभी जीना उत्तम नहीं है १

गतेशोकोनकर्तव्योभविष्यंनैवचिन्तयेत् ॥
वर्तमानेन कालेन प्रवर्तन्ते विचक्षणाः ॥ २ ॥

दोहा–गतवस्तुन शोचै नहीं, गुनै न होनीहार ।
काज करहिं परवीन जन, आय परे अनुसार ॥ २ ॥

भा० टी०–गतवस्तुका शोक और भावीकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये कुशल लोग वर्तमानकालके अनुरोधसे प्रवृत्त होते हैं ॥ २ ॥

स्वभावेनहितुष्यंति देवा सत्पुरुषाः पिता ।
ज्ञातयःस्नानपानाभ्यां वाक्यदानेनपंडिताः ॥३॥

दोहा–देव सत्पुरुष अरु पिता, करहिं सुभाव प्रसाद ।
स्नानपान लहि बन्धु सब, पंडित पाय सुवाद ॥ ३ ॥

भा० टी०–निश्चय है कि देवता, सत्पुरुष और पिता ये प्रकृतिसे संतुष्ट होते हैं, पर बंधु स्नान और पानसे और पंडित प्रियवचनसे ॥ ३ ॥

आयुः कर्मचवित्तं च विद्यानिधनमेवच ।
पञ्चैतानि च सृज्यंते गर्भस्थस्यैवदेहिनः ॥ ४ ॥

दोहा-आयुर्बल धन कर्म औ, विद्या मरण गनाय ॥
पांचों रहते गर्भमें, जीवनके रचिजाय ॥ ४ ॥

भा० टी०-आयुर्दाय, कर्म, विद्या, धन और मरण ये पांच जब जीव गर्भमें रहताहै उसी समय सिरजे जाते हैं ॥ ४ ॥

अहोबतविचित्राणिचरितानिमहात्मनाम् ॥
लक्ष्मींतृणायमन्यन्तेतद्भारेणनमंति च ॥ ५ ॥

दोहा-अजरज चरित विचित्र अति, बडे जननके माहिं ।
जो तृणसम सम्पति मिले, तासु भार नै जाहिं ॥ ५ ॥

भा० टी०-आश्चर्य है कि, महात्माओंके विचित्र चरित्र हैं, लक्ष्मीको तृण समान मानते हैं, यदि मिलती है तो उसके भारसे नम्र हो जाते हैं ॥ ५ ॥

यस्यस्नेहोभयंतस्यस्नेहोदुःखस्यभाजनम् ॥
स्नेहमूलानिदुःखानितत्त्यक्त्वावसेत्सुखम् ६॥

दोहा-जाहि प्रीति भय ताहिको, प्रीति दुःखको पात्र ।
प्रीति मूल दुख त्यागिके, वसै तबै सुखमात्र ॥ ६ ॥

भा० टी०-जिसको किसीमें प्रीति रहती है उसीको भय होता है, स्नेहही दुःखका भाजन है और सब दुःखका कारण स्नेहही है इस कारण उसे छोडकर सुखी होना उचित है ॥ ६ ॥

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा ॥
द्वावेतौसुखमेधेते यद्भविष्योविनश्यति ॥ ७ ॥

दोहा–पहिलहि करत उपाय जो, परेहु तुरत जेहि सूझ ।
दुहुन बढत सुख बरत जो, होनी गुणत अबूझ ॥ ७॥

भा० टी०–आनेवाले दुःखके पहिलेसे उपाय करनेवाला और जिसकी बुद्धिमें विपत्ति आजाने पर शीघ्रही उपायभी आजाता है ये दोनों सुखसे बढते हैं और जो सोचता है कि, भाग्यवशते जो होनेवाला है सो अवश्य होगा वह विनष्ट होजाता है ॥ ७ ॥

राज्ञिधर्मिणिधर्मिष्ठाः पापेपापा समेसमाः ॥
राजानमनुवर्तंते यथा राजातथाप्रजाः ॥ ८ ॥

दोहा–नृप धर्मी तो धर्म युत, पापी पाप अचार ।
जस राजा तैसी प्रजा, चलत राज अनुसार ॥ ८ ॥

भा० टी०–यदि धर्मात्मा राजा होता है तो प्रजाभी धर्मिष्ठ होती है, यदि पापी हो तो पापी होती है, सब प्रजा राजाके अनुसार चलती है जैसा राजा वैसी प्रजाभी होती है ॥ ८ ॥

जीवन्तंमृतवन्मन्ये देहिनंधर्मवर्जितम् ॥
मृतो धर्मेण संयुक्तो दीर्घजीवीनसंशयः ॥ ९ ॥

दोहा–जीवित हू समझै मरेउ, मनुजहि धर्म विहीन ।
नहिं संशय चिरजीव सो, मरेहु धर्म जेहि कीन ॥ ९ ॥

भा० टी०–धर्मरहित जीतेको मृतके समान समझताहूँ, निश्चय धर्मयुत मराभी पुरुष चिरंजीवीही है ॥ ९ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणांयस्यैकोऽपिनविद्यते ॥
अजागलस्तनस्येवतस्यजन्मनिरर्थकम् ॥ १० ॥

दोहा–धर्म अर्थ अरु काम अरु, मोक्ष न एकौ जासु ।
अजाकण्ठकुचके सरिस, व्यर्थ जन्म है तासु ॥ १० ॥

भा० टी०–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन्होंमेंसे जिसको एक भी नहीं रहता, बकरीके गलस्तनके समान उसका जन्म निरर्थक है १०

दह्यमानाःसुतीव्रेणनीचाःपरयशोऽग्निना ॥
अशक्तास्तत्पदंगन्तुंततोनिन्दांप्रकुर्वते ॥ ११ ॥

दोहा–और अगिन यश दुसहसों, जरिजरि दुर्जन नीच ।
आप न तैसो करिसकैं, तब तिहि निन्दहिं बीच ॥ ११ ॥

भा० टी०–दुर्जन दूसरेकी कीर्तिरूपदुःसह अग्निसे जलकर उसके पदको नहीं पाते इसलिये उसकी निन्दा करने लगते हैं ॥ ११ ॥

बन्धाय विषयासंगो मुक्त्यैनिर्विषयं मनः ॥
मनएवमनुष्याणांकारणंबन्धमोक्षयोः ॥ १२ ॥

दोहा–विषयसंग परिबंध करु, विषयहीन निर्वान ।
बंधमोक्ष इन दुहुँनको, कारन मनै न आन ॥ १२ ॥

भा० टी०–विषयमें आसक्त मन बंधका हेतु है विषयसे रहित मुक्तिका, मनुष्योंके बंध और मोक्षका कारण मनही है ॥ १२ ॥

देहाभिमाने गलिते ज्ञानेन परमात्मनः ॥
यत्रयत्रमनो याति तत्रतत्रसमाधयः ॥ १३ ॥

दोहा–ब्रह्मज्ञानसों देहको, विगत भये अभिमान ।
जहां जहां मन जातहै, तहां समाधिहि जान ॥ १३ ॥

भा० टी०–परमात्माके ज्ञानसे देहके अभिमानका नाश होजानेपर जहां जहां मन जाता है तहां तहां समाधिही है ॥ १३ ॥

ईप्सितंमनसःसर्वंकस्यसम्पद्यतेसुखम् ॥
दैवायत्तंयतःसर्वंतस्मात्सन्तोषमाश्रयेत् ॥१४॥

दोहा–इच्छित सब सुख केहि मिले, जब सब दैवाधीन ।
यहिते सन्तोषहि शरण, चहिये चतुर कहँ कीन ॥ १४॥

भा० टी०–मनका अभिलषित सब सुख किसको मिलता है जिस कारण सब दैवके वश हैं इससे सन्तोषपर भरोसा करना उचितहै १४

यथाधेनुसहस्रेषु वत्सोगच्छति मातरम् ॥
तथा यच्चकृतं कर्मकर्त्तारमनुगच्छति ॥ १५ ॥

दोहा—जैसे धेनु हजारमें, वत्स जाय लखि मात ।
तैसेही कीन्हों करम, कर्ताके ढिग जात ॥ १५ ॥

भा० टी०—जैसे सहस्र धेनुओंके रहते बछरा माताहीके निकट जाता है, वैसेही जो कुछ कर्म किया जाताहै सो कर्ताहीको मिलताहै १५॥

अनवस्थितकार्यस्य न जने न वने सुखम् ॥
जनोदहति संसर्गाद्वनं सङ्गविवर्जनात् ॥ १६ ॥

दोहा—अनथिरकारजते न सुख, जन औ बन दुहुँमाहिं ।
जन तेहिं दाहैं संगते, वन बिनसंगहिं दाहिं ॥ १६ ॥

भा० टी०—जिसके कार्यकी स्थिरता नहीं रहती वह न जनमें और न बनमें सुख पाता है। जन उसको संसर्गसे जलाता और वन संगके त्यागसे जराता है ॥ १६ ॥

यथाखात्वाखनित्रेण भूतले वारिविन्दति ॥
तथागुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ १७॥

दोहा—जिमि खोदेहीते मिलै, भूतलके माधि वारि ।
तैसेहि सेवाके किये, गुरु विद्या मिल धारि ॥ १७ ॥

भा० टी०—जैसे खननेके साधनसे खनके नर पातालके जलको पाता है वैसेही गुरुगत विद्याको सेवक (शिष्य) पाता है ॥ १७ ॥

कर्मायत्तंफलं पुंसांबुद्धिःकर्मानुसारिणी ॥
तथापिसुधियश्चार्याः सुविचार्यैवकुर्वते ॥ १८॥

दोहा–फलसिधि कर्म अधीन है, बुद्धि कर्म अनुसारि ।
तौहू सुमति महान जन, कारज कराहिं विचारि ॥ १८॥

भा० टी०–यद्यपि फल पुरुषके कर्मके अधीन रहताहै और बुद्धि कर्मके अनुसारही चलती है तथापि विवेकी महात्मा लोग विचार-हीके काम करते हैं ॥ १८ ॥

सन्तोषस्त्रिषुकर्तव्यःस्वदारे भोजने धने ॥
त्रिषुचैवनकर्तव्योऽध्ययने जपदानयोः ॥ १९॥

दोहा–निज तिय धर्म भोजन तिहूँ, चहिये कीन्ह संतोष ।
पठन दान तपमें नहीं, तहँ संतोषै दोष ॥ १९ ॥

भा० टी०–स्त्री, भोजन और धन इन तीनोंमें सन्तोष करना उचित है । पढना, जप और दान इन तीनोंमें सन्तोष कभी नहीं करना चाहिये ॥ १९ ॥

एकाक्षरप्रदातारं योगुरुं नाभिवंदते ॥
श्वानयोनिशतं भुक्त्वाचाण्डालेष्वभिजायते२०

दोहा–एक अक्षर दातहु गुरुहिं, जो नर वन्दे नाहिं ।
जन्म सैकडा श्वान ह्वै, जनै चँडालन माहिं ॥ २० ॥

भा० टी०-जो एक अक्षरभी देनेवाले गुरुकी वन्दना नहीं करता वह कुत्तेकी सौ योनिको भोगकर चांडालोंमें जन्मता है ॥ २० ॥

युगांतेप्रचलेन्मेरुःकल्पांतेसप्तसागराः ॥
साधवःप्रतिपन्नार्थानचलंतिकदाचन ॥ २१ ॥

दोहा-सातसिंधु कल्पांत चलु, मेरु चलै जुग अन्त ।
परे प्रयोजनते कबहुं, नहिं चलते हैं सन्त ॥ २१ ॥

भा० टी०-युगके अन्तमें सुमेरु चलायमान होता है और कल्पके अन्तमें सातों सागर, परन्तु साधुलोग स्वीकृत अर्थसे कभी नहीं विचलते ॥ २१ ॥

इति वृद्धचाणक्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः १४.

पृथिव्यांत्रीणिरत्नानिजलमन्नंसुभाषितम् ॥
मूढःपाषाणखण्डेषुरत्नसंख्याविधीयते ॥ १ ॥

म०छंद-अन्न वारि चारु बोल । तीनि रत्न भू अमोल ।
मूढलोगने पषान । टूक रत्नके बखान ॥ १ ॥

भा० टी०--पृथ्वीमें जल, अन्न और प्रियवचन ये तीनही रत्न हैं मूढोंने पाषाणके टुकडोंमें रत्नकी गिनती की है ॥ १ ॥

आत्मापराधवृक्षस्यफलान्येतानिदेहिनाम् ॥
दारिद्र्यरोगदुःखानिबन्धनंव्यसनानि च ॥ २ ॥

म०छं०–निर्धनत्व दुःख राग । बन्ध औ विपत्ति शोक ।
है स्वपापवृक्ष जात । ए फलै धरेके गात ॥ २ ॥

भा० टी०–जीवोंको अपने अपराधरूप वृक्षके दरिद्रता, रोग, दुःख, बन्धन और विपत्ति ये फल होते हैं ॥ २ ॥

पुनर्वित्तं पुनर्मित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही ॥
एतत्सर्वं पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनः पुनः ॥ ३ ॥

म०छं०–फेरि वित्त फेरि मित्त । फेरि ती धराहु मित्त ।
फेरि फेरि सर्व येह । मानुषी मिलै न देह ॥ ३ ॥

भा० टी०–धन, मित्र, स्त्री और पृथ्वी ये फिर २ मिलते हैं परन्तु यह मनुष्यशरीर फिर २ नहीं मिलता ॥ ३ ॥

बहूनां चैवसत्त्वानां समवायोरिपुञ्जयः ॥
वर्षाधाराधरो मेघस्तृणैरपिनिवार्यते ॥ ४ ॥

म०छं०–एक है अनेक लोग । वीर्य शत्रु जीति योग ।
मेघ धार वारि देत । घास ढेर वारि देत ॥ ४ ॥

भा० टी०-निश्चय है कि, बहुतजनोंका समुदाय शत्रुको जीत लेता है, तृणसमूहभी वृष्टिकी धाराके धरनेवाले मेघका निवारण करता है ॥ ४ ॥

जले तैलखलेगुह्यं पात्रेदानं मनागपि ॥
प्राज्ञेशास्त्रंस्वयंयातिविस्तारंवस्तुशक्तितः ॥५॥

म०छं०-थोर तेल वारि माहिं । गुप्तहू खलानि पाहिं ।
दान शास्त्र पात्र ज्ञानि । ये बढै स्वभाव आनि ॥५॥

भा० टी०-जलमें तेल, दुर्जनमें गुप्तवार्ता, सुपात्रमें दान और बुद्धिमानमें शास्त्र ये थोडेही हों तो भी वस्तुकी शक्तिसे. अपने आप विस्तारको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ५ ॥

धर्माख्यानेश्मशानेचरोगिणांयामतिर्भवेत् ॥
सासर्वदैवतिष्ठेच्चेत्कोनमुच्येतबन्धनात् ॥ ६ ॥

म०छं०-धर्मवारता मशान । रोगमाहिं जौन ज्ञान ।
जो रहै वही सदोइ । बंध को न मुक्त होइ ॥ ६ ॥

भा० टी०-धर्मविषयक कथामें श्मशानपर और रोगियोंको जो बुद्धि उत्पन्न होती है वह यदि सदा रहती तो कौन बन्धनसे मुक्त न होता ॥ ६ ॥

उत्पन्नपश्चात्तापस्य बुद्धिर्भवति यादृशी ॥
तादृशीयदिपूर्वंस्यात्कस्यनस्यान्महोदयः ॥७॥

म०छं०—आदि चूकि अन्त शोच । जो रहै विचारि दोष ।
पूर्वहीं बनै जो तैस । कौन को मिले न ऐस ॥ ७ ॥

भा० टी०—निंदित कर्म करनेके पश्चात् पछतानेवाले पुरुषको जैसी बुद्धि उत्पन्न होती है वैसी यदि पहिले होती तो किसको बडी समृद्धि न होती ॥ ७ ॥

दाने तपसिशौर्ये वा विज्ञानेविनयेनये ॥
विस्मयोनहिकर्तव्यो बहुरत्नावसुन्धरा ॥ ८ ॥

म०छं०—दान नय विनय नगीच । शूरता विज्ञान बीच ।
कीजिये अचर्य नाहिं । रत्नढेर भूमि माहिं ॥ ८ ॥

भा० टी०—दानमें, तपमें, शूरतामें, विज्ञतामें, सुशीलतामें और नीतिमें विस्मय नहीं करना चाहिये ३ कारण कि, पृथ्वीमें बहुत रत्न हैं ॥ ८ ॥

दूरस्थोऽपिनदूरस्थोयोयस्यमनासिस्थितः ॥
योयस्यहृदयेनास्तिसमीपस्थोऽपिदूरतः ॥९ ॥

म०छं०—दूरहू बसै नगीच । जासु जौन चित्तबीच ।
जो न जासु चित्त पूर । है समीपहू सो दूर ॥ ९ ॥

भा० टी०—जो जिसके हृदयमें रहता है वह दूर भी हो तौभी वह

दूर नहीं, जो जिसके मनमें नहीं है वह समीप भी हो तोभी वह दूर है ॥ ९ ॥

यस्माच्चप्रियमिच्छेत्तुतस्यब्रूयात्सदाप्रियम् ॥
व्याधोमृगवधंगन्तुं गीतं गायतिसुस्वरम् ॥ १० ॥

म० छं०–जाहिते चहै सुपास । मीठि बोलि तासु पास ।
व्याध मारिबे मृगान । मंजु गावतो सुगान ॥ १० ॥

भा० टी०–जिससे प्रियकी वांछा हो उससे सदा प्रिय बोलना उचित है व्याध मृगके वधके निमित्त मधुरस्वरसे गीत गाता है ॥ १० ॥

अत्यासन्नाविनाशायदूरस्थानफलप्रदाः ॥
सेव्यतांमध्यभागेनराजावह्निर्गुरुःस्त्रियः ॥ ११ ॥

म० छं०–अतिपास नाशहेत । दूरहू फलै न देत ।
सेवनीय मध्यभाग । गुरू भूप नारि आग ॥ ११ ॥

भा० टी०–अत्यन्त निकट रहनेपर विनाशके हेतु होते हैं दूर रहनेसे फल नहीं देते इस हेतु राजा, अग्नि, गुरु और स्त्री इनको मध्यम अवस्थासे सेवना चाहिये ॥ ११ ॥

अग्निरापः स्त्रियोमूर्खःसर्पोराजकुलानिच ॥
नित्यंयत्नेनसेव्यानिसद्यः प्राणहराणिषट् ॥ १२ ॥

म० छं०–अग्नि सर्प मूर्ख नारि । राजवंश और वारि ।
यत्नसाथ सेवनीय । सद्य ये हरैं छ जीय ॥ १२ ॥

भा० टी०-आग, जल, स्त्री, मूर्ख और राजाके कुल ये सदा सावधानतासे सेवनके योग्य हैं, ये छः शीघ्र प्राणके हरनेवाले हैं १२॥

स जीवति गुणायस्य यस्यधर्मः सजीवति ॥
गुणधर्मविहीनस्य जीवितंनिष्प्रयोजनम् ॥१३॥

म०छं०-जीवत गुणी जो होय । वा सुधर्मयुक्त जोय ॥
धर्म औ गुणो न जासु । जीवना सुव्यर्थ तासु ॥१३॥

भा० टी०-वही जीता है, जिसके गुण हैं, और वही जीता है जिसके धर्म हैं गुण और धर्मसे हीन पुरुषका जीना व्यर्थ है ॥१३॥

यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ॥
पुरापञ्चदशास्येभ्यो गांचरंतींनिवारय ॥ १४ ॥

म०छं०-चाहते वशै जो कीन । एक कर्म लोग तीन ।
पन्द्रहोंके तौ मुखान । गान तौ बहोरु आन ॥१४॥

भा० टी०-जो एकही कर्मसे जगत्को वश किया चाहते हो तो पहिले पंद्रहोंके मुखसे मनको निवारण करो, तात्पर्य यह है कि आंख, कान, नाक, जीभ, त्वचा ये पांचों ज्ञानेन्द्रिय हैं. मुख, हाथ, पांव, लिङ्ग, गुदा ये पांच कर्मेन्द्रिय हैं. शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पांच ज्ञानेन्द्रियोंके विषय हैं. इन पन्द्रहोंसे मनको निवारण करना उचित है ॥ १४ ॥

प्रस्तावसदृशंवाक्यंप्रभावसदृशंप्रियम् ॥
आत्मशक्तिसमंकोपंयोजानातिसपण्डितः ।१५॥

सो०–प्रिय स्वभाव अनुकूल, योग्य प्रसंगै वचन पुनि ।
निज बलके सम तूल, कोप जानु पंडित सोई ॥ १५ ॥

भा० टी०–प्रसङ्गके योग्य वाक्य, प्रकृतिके सदृश प्रिय और अपनी शक्तिके अनुसार कोपको जो जानता है वह बुद्धिमान् है ॥ १५ ॥

एकएवपदार्थस्तु त्रिधाभवतिवीक्षितः ॥
कुणपःकामिनीमांसंयोगिभिःकामिभिःश्वभिः १६

सो०–वस्तु एकही होय, तीनि तरह देखी गती ।
रति मृत मांसू सोय, कामि योगि कुत्तेनसों ॥ १६ ॥

भा० टी०–एकही देहरूप वस्तु तीन प्रकारकी देख पडती है. योगी लोग उसको अतिनिंदित मृतकरूपसे, कामी पुरुष कांतारूपसे और कुत्ते मांसरूपसे देखते हैं ॥ १६ ॥

सुसिद्धमौषधं धर्मं गृहाच्छिद्रंचमैथुनम् ॥
कुभुक्तंकुश्रुतं चैव मतिमान्नप्रकाशयेत् ॥१७॥

सो०–सिद्धौषध औ धर्म, मैथुन कुवचन भोजनौ ।
अपने घरका मर्म, चतुर नाहिं प्रगटित करै ॥ १७ ॥

भा० टी०-सिद्ध औषध, धर्म, अपने घरका दोष, मैथुन, कुअन्नका भोजन और निंदित वचन इनका प्रकाश करना बुद्धिमान्‌को उचित नहीं है ॥ १७ ॥

तावन्मौनेननीयन्ते कोकिलैश्चैववासराः ॥
यावत्सर्वजनानंददायिनिवाक्प्रवर्तते ॥ १८ ॥

सो०-तोलौं मौने ठानि, कोकिलहू दिन काटते ।
जौलौं आनन्दखानि, सबको वाणी होत है ॥ १८ ॥

भा० टी०-तबलौं कोकिल मौनसाधनसे दिन बिताता है, जबलौं सब जनोंको आनन्द देनेवाली वाणीका प्रारम्भ करता है ॥ १८ ॥

धर्मंधनं च धान्यं च गुरोर्वचनमौषधम् ॥
सुगृहीतं च कर्तव्यमन्यथा तु न जीवति ॥१९॥

सो०-धर्म धान्य धनवानि, गुरुवच औषध पांच यह ।
ग्रहण करन शुभ जानि, भले और विधि नहिं जिवै ॥१९

भा० टी०-धर्म, धन, धान्य, गुरुका वचन और औषध यदि हों तो इनको भली भांतिसे सुगृहीत करना चाहिये, जो ऐसा नहीं करता वही नहीं जीता ॥ १९ ॥

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम् ॥
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम् ॥२०॥

सो०–तजौ दुष्टसहवास, भजो साधु संगम रुचिर ।
करौ पुण्य परकाश, हरि सुमिरौ जग नित्य नाहिं ॥२०॥

भा० टी०–खलका संग छोड, साधुकी संगतिको स्वीकार कर, दिन रात पुण्य किया कर और ईश्वरका नित्य स्मरण कर इस कारण कि, संसार अनित्य है ॥ २० ॥

इति वृद्धचाणक्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः १५.

यस्यचित्तंद्रवीभूतंकृपयासर्वजन्तुषु ॥
तस्यज्ञानेनमोक्षेणकिंजटाभस्मलेपनैः ॥ १ ॥

दोहा–जासु चित्त सब जन्तुपर, गलित दया रसमाह ।
तासु ज्ञान मुक्ती जटा, भस्मलेप करु काह ॥ १ ॥

भा० टी०–जिसका चित्त सब प्राणियोंपर दयासे पिघल जाता है उसको ज्ञानसे, मोक्षसे, जटासे और विभूतिके लेपनसे क्या ?॥१॥

एकमेवाक्षरंयस्तु गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत् ॥
पृथिव्यांनास्तितद्द्रव्यंयद्दत्त्वाचानृणीभवेत् ॥२॥

दोहा–एको अक्षर जो गुरू, शिष्यहि देत जनाय ।
भूमिमाहिं धन नाहिं वह, जो दै अनृण कहाय ॥ २ ॥

भा० टी–जो गुरु शिष्यको एकभी अक्षरका उपदेश करताहै पृथ्वी-में ऐसा द्रव्य नहीं है जिसको देकर शिष्य उससे उऋण होय ॥ २॥

खलानांकण्टकानां च द्विविधैव प्रतिक्रिया ॥
उपानन्मुखभंगोवा दूरतो वा विसर्जनम् ॥ ३ ॥

दोहा–खल कांटा इन दुहुंनको, दोई जगत उपाय।
जूतनते मुख तोडबो, रहिवो दूर बचाय ॥ ३ ॥

भा० टी०–खल और कांटा इनका दोही प्रकारका उपाय है जूतासे मुखका तोडना या दूसरा त्याग ॥ ३ ॥

कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं
बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणं च ॥
सूर्योदये चास्तमितेशयानं
विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः ॥ ४ ॥

दोहा–वसन दशन राखै मलिन, बहु भोजन कटु बैन।
सोवै रवि छिपवत उगत, तजु श्री जो हरि ऐन ॥ ४ ॥

भा० टी०–मलिन वस्त्रवालेको, जो दांतोंके मलको दूर नहीं करता उसको, वहुत भोजन करनेवालेको, कटुभाषीको, सूर्यके उदय और अस्तके समयमें सोनेवालेको लक्ष्मी छोड देती है चाहे वह विष्णु हो ॥ ४ ॥

त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं
दाराश्च भृत्याश्च सुहृज्जनाश्च ॥
तं चार्थवन्तं पुनराश्रयन्ते
ऽतोर्थोहिलोके पुरुषस्य बन्धुः ॥ ५ ॥

दोहा–तजहिं तीय हित मीत औ, सेवक धन जब नाहिं ।
धन आये सेवैं बहुरि, धनै बन्धु जगमाहिं ॥ ५ ॥

भा० टी०–मित्र, स्त्री, सेवक और बन्धु ये धनहीन पुरुषको छोड देते हैं और वही पुरुष यदि धनी होजाता है तो फिर उसीका आश्रय करते हैं अर्थात् धनही लोकमें बन्धु है ॥ ५ ॥

अन्यायोपार्जितंद्रव्यं दशवर्षाणितिष्ठति ॥
प्राप्तेचैकादशेवर्षे समूलंचविनश्यति ॥ ६ ॥

दोहा–करि अनीति जोरेउ धन, दशौ वर्ष ठहराय ।
ग्यारहवें लागतेहि, जरा मूलसों जाय ॥ ६ ॥

भा० टी०–अनीतिसे अर्जित धन दश वर्ष पर्यंत ठहरता है। ग्यारहवें वर्षके प्राप्त होनेपर मूलसहित नष्ट होजाता है ॥ ६ ॥

अयुक्तंस्वामिनोयुक्तं युक्तंनीचस्यदूषणम् ॥
अमृतंराहवेमृत्युर्विषंशंकरभूषणम् ॥ ७ ॥

दोहा–खोटो भल समरत्थ पहँ, भलो खोट लहि नीच ।
विषौ भयो भूषण शिवहि, अमृत राहु कहँ मीच ॥ ७ ॥

भा० टी०–अयोग्यभी वस्तु समर्थको योग्य होती है और योग्यभी दुर्जनको दूषण, अमृतने राहुको मृत्यु दिया, विषभी शंकरको भूषण हुआ ॥ ७ ॥

तद्भोजनं यद्द्विजभुक्तशेषं
तत्सौहृदं यत्क्रियते परस्मिन् ।
सा प्राज्ञता या न करोति पापं
दम्भं विना यः क्रियते स धर्मः ॥ ८ ॥

दोहा–द्विज उबरेउ भोजन सोइ, परमहँ मैत्री सोय ।
जेहि न पाप वह चतुरता, धर्म दंभ विनु जोय ॥ ८ ॥

भा० टी०–वही भोजन है जो ब्राह्मणके भोजनसे बचा है, वही मित्रता है जो दूसरेमें की जाती है, वही बुद्धिमानी है जो पाप नहीं करती और विना दम्भके जो किया जाता है वही धर्म है ॥ ८ ॥

मणिर्लुठतिपादाग्रे काचः शिरसिधार्यते ॥
क्रयविक्रयवेलायां काचः काचोमणिर्मणिः॥९॥

दोहा–मणि लोटत रहु पाँवतर, कांच रह्यो शिर जाय ।
लेत देत मणि मणि रहै, कांच कांच रहिजाय ॥ ९ ॥

भा० टी०–मणि पांवके आगे लोटती हो और कांच शिरपरभी रक्खा हो परन्तु क्रय विक्रय समयमें कांच कांचही रहता है और मणि मणिही ॥ ९ ॥

अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्या
अल्पश्च कालो बहुविघ्नता च ।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं
हंसो यथा क्षीरमिवांबुमध्यात् ॥ १० ॥

दोहा–बहुत विघ्न कम काल है, विद्या शास्त्र अपार ।
जलसे जैसे हंस पय, लीजै सार निसार ॥ १० ॥

भा० टी–शास्त्र अनन्त हैं और विद्या बहुत, काल थोडा है और विघ्न बहुत इस कारण जो सार उसको ले लेना उचित है जैसे हंस जलके मध्यसे दूधको ले लेता है ॥ १० ॥

दूरागतं पथि श्रांतं वृथा च गृहमागतम् ॥
अनर्चयित्वायोभुंक्ते सवै चांडालउच्यते ॥ ११ ॥

दोहा–दूर देशते राह थकि, बिनु कारज घर आय ।
तेहि विनु पूजे खाय, सो चंडाल कहाय ॥ ११ ॥

भा० टी०–दूरसे आयेको, पथसे थकेको और निरर्थक गृहपर आयेको विना पूजे जो खाता है वह चांडालही गिना जाताहै ॥ ११ ॥

पठंतिचतुरोवेदान्धर्मशास्त्राण्यनेकशः ॥
आत्मानं नैव जानंति दर्वीपाकरसं यथा ॥ १२ ॥

दोहा–पढे चारहू वेदहूँ, धर्मशास्त्र बहु वाद ।
आपुहि जानै नाहिं ज्यों, करछिहि व्यंजन स्वाद ॥ १२ ॥

भा० टी०—चारों वेद अनेक धर्मशास्त्र पढते हैं परन्तु आत्माको नहीं जानते जैसे कलछी पाकके रसको ॥ १२ ॥

धन्या द्विजमयी नौका विपरीता भवार्णवे ॥
तरंत्यधोगताः सर्वे उपरिस्थाःपतंत्यधः ॥१३॥

दोहा—भवसागरमें धन्य है, उलटी यह द्विजनाव ।
नीचे रहि तरि जात सब, ऊपर रहि बुडिजाव ॥ १३ ॥

भा० टी०—यह ब्राह्मणरूप नाव धन्य है, संसाररूप समुद्रमें इसकी उलटीही रीति है उसके नीचे रहनेवाले सब तरते हैं और ऊपर रहने वाले नीचे गिरते हैं अर्थात् ब्रह्माणसे जो नम्र रहता है वह तर-जाता है और जो नम्र नहीं रहता है वह नरकमें गिरता है ॥१३॥

अयममृतनिधानंनायकोऽप्योषधीना-
ममृतमयशरीरःकांतियुक्तोऽपिचन्द्रः ।
भवतिविगतरश्मिर्मंडलंप्राप्यभानोः
परसदननिविष्टःकोलघुत्वंनयाति ॥ १४ ॥

दोहा—सुधाधाम औषधिप, छबियुत अमियशरीर ।
तऊ चंद रविढिग मलिन, परघर कौन गँभीर ॥ १४ ॥

भा० टी०—अमृतका घर, औषधियोंका अधिपति, जिसका शरीर

अमृतमय और शोभायुतभी चन्द्रमा सूर्यके मण्डलमें जाकर निस्तेज होता है दूसरेके घरमें बैठकर कौन लघुता नहीं पाता ? ॥ १४ ॥

अलिरयंनलिनीदलमध्यगःकमलिनीमकरंद-मदालसः । विधिवशात्परदेशमुपागतः कुट-जपुष्परसं बहुमन्यते ॥ १५ ॥

दोहा–यह अलि नलिनीपानमधि, तोहि रसमद अलसान ।
परि विदेश विधिवश कुरै, फूलरसे बहु मान ॥ १५ ॥

भा० टी०–यह भौंरा जब कमलिनीके पत्तोंके मध्यमें था तब कमलिनीके फूलके रससे आलसी बना रहता था, अब दैववशसे आकर कोरैयाके फूलको बहुत समझता है ॥ १५ ॥

पीतोगस्त्येनतातश्चरणतलहतो वल्लभोऽन्ये नरोषादाबाल्याद्विप्रवर्यैःस्ववदनविवरेधार्यते वैरिणीमे । गेहंमेछेदयन्तिप्रतिदिवसमुमाकांतपूजानिमित्तं तस्मात्खिन्नासदाहं द्विजकुल-सदनंनाथनित्यंत्यजामि ॥ १६ ॥

सवैया–क्रोधसे तात पियो चरणनसे स्वामि हतो जिन रोषसे
छाती । बालसे वृद्ध भये तक मुखमें भारतिवैरिणिधा

सँघाती ॥ मम जो वास पुष्प उन तोडत शिवजीकी पूजा होत प्रभाती। तासे दुख मान सदैव हरि मैं ब्राह्मणकुलका त्याग चिताती ॥ १६ ॥

भा० टी०-अगस्त्य ऋषिने रुष्ट होकर मेरे पिताको पी डाला और दूसरे (भृगु) ने क्रोधके मारे पांवसे मेरे पतिको मारा, जो श्रेष्ठ ब्राह्मण बैठे सदा लडकपनसे लेकर मुखविवरमें मेरी वैरिणीको रखते हैं और प्रतिदिन पार्वतीके पतिकी पूजाके निमित्त मेरे गृहको काटते हैं हे नाथ! इससे खेद पाकर ब्राह्मणोंके घरको सदा छोडे रहतीहूँ॥१६॥

बंधनानि खलु सांति बहूनि प्रेमरज्जुकृत बन्धनमन्यत् ॥ दारुभेदनिपुणोऽपिषडंघ्रि-र्निष्क्रियोभवतिपंकजकोशे ॥ १७ ॥

दोहा-बंधन बहुतेरे अहैं, प्रेमबन्ध कछु और।
काठो काटनमें निपुण, बँध्यो कमल महँ भौंर ॥ १७ ॥

भा० टी०-बन्धन तो बहुत हैं परन्तु प्रीतिकी रस्सीका बन्धन औरही है काठके छेदनमें कुशलभी भौंरा कमलके कोशमें निर्व्यापार हो जाता है ॥ १७ ॥

छिन्नोपि चन्दनतरुर्न जहाति गन्धं बद्धोऽपि वारणपतिर्न जहाति लीलाम् ।

यन्त्रार्पितो मधुरतां न जहाति चेक्षुः
क्षीणोपि न त्यजति शीलगुणान्कुलीनः॥ १८ ॥

दोहा—कट्यो न चन्दन महक तजु, बँध्यो न खेल गजेश ।
ऊख न पेरिउ मधुरता, शील न सुकुल कलेश ॥ १८ ॥

भा० टी०—काटाचन्दनका वृक्ष गन्धको त्याग नहीं देता, बन्धाभी गजपति विलासको नहीं छोडता, कोल्हूमें पेरीभी ऊख मधुरता नहीं छोडती, वैसेही दरिद्रभी कुलीन सुशीलता आदि गुणोंका त्याग नहीं करता ॥ १८ ॥

उर्व्यां कोपि महीधरो लघुतरो दोर्भ्यां धृतो लीलया तेन त्वंदिवि भूतले च विदितो गोवर्धनोद्धारकः ॥ त्वां त्रैलोक्यधरं वहामि कुचयोरग्रेण तद्गण्यते । किं वा केशवभाषणेनबहुनापुण्यैर्यशो लभ्यते ॥ १९ ॥

सवैया—कोऊ भूमीके माहिं लघु पर्वत करधारकै नाम तुम्हार पर्यो है । भूतल स्वर्गके बीच सभीने जो गिरिवर-धारि प्रसिद्ध कियो है ॥ तीनलोकके धारक तुमको धारों सदा कुच कौन गिनत है । तासे बहु कहना है जो वृथा यश लाभ हरे निज पुण्य मिलत है ॥ १९ ॥

भा०टी०-पृथ्वीपर किसी अत्यन्त हलके पर्वतोंको अनायाससे बाहुओंके ऊपर धारण करनेसे आप स्वर्ग और पृथ्वीतलमें सर्वदा गोवर्द्धनधारी कहलाते हैं, तीनों लोकोंके धरनेवाले आपको केवल कुचोंके अग्रभागमें धारण करतीहूं यह कुछ भी नहीं गिना जाता है, हे केशव ! बहुत कहनेसे क्या ! पुण्योंसे यश मिलता है ॥१९॥

इति वृद्धचाणक्ये पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः १६.

नध्यातंपदमीश्वरस्य विधिवत्संसारवि-च्छित्तये स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽ-पि नोपार्जितः ॥ नारीपीनपयोधरोरुयुग-लं स्वप्नेपिनालिंगितं मातुःकेवलमेवयौवनव-नच्छेदे कुठारा वयम् ॥ १ ॥

कवित्त-कौन नहिं ध्यान हरिपदको जो मुक्ति पददाता शास्त्र
बीचमें कह्योहै । स्वर्गकेभी द्वारको खोलतहै बलसे
उस धर्मकाभी संचय नहीं कियो है ॥ नारिनके पुष्ट
कुच स्वप्नमें न देखे ऐसो खोटो जन्म हमहीको आय

मिल्यो है । माताके यौवन वन छेदन कुठार भयो यही-
म्हारे नाम जगमाहिं तुल्यो है ॥ १ ॥

भा० टी०–संसारसे मुक्त होनेके लिये विधिसे ईश्वरके पदका ध्यान मुझसे न हुआ, स्वर्गद्वारके कपाटके तोडनेमें समर्थ धर्मकाभी अर्जन न किया और स्त्रीके दोनों पीनस्तन और जंघाओंका आलिङ्गन स्वप्नमेंभी न किया, मैं माताके युवापनरूप वृक्षके केवल काट-नेमें कुल्हाडी हुआ ॥ १ ॥

जल्पंतिसार्द्धमन्येनपश्यंत्यन्यंसविभ्रमाः ॥
हृदये चिन्तयंत्यन्यं न स्त्रीणामेकतो रतिः॥२॥

दोहा–बोलैं हैं कोइ औरसे, चितवत हैं कहिं और ।
मनमें चिन्ता अन्यकी, न स्त्री रति इकठौर ॥ २ ॥

भा० टी०–भाषण दूसरेके साथ करती हैं, दूसरेको विलाससे देखती हैं; हृदयमें दूसरेहीकी चिंता करती हैं, स्त्रियोंकी प्रीति एकमें नहीं रहती ॥ २ ॥

योमोहान्मन्यतेमूढोरक्तेयंमयिकामिनी ॥
सतस्यावशगोभूत्वानृत्येत्क्रीडाशकुन्तवत्॥३॥

दोहा–जो मूरख ऐसे गिनत, कामिनीका मोहि ध्यान ।
नीचे उसके वश परचो, क्रीडापक्षि समान॥ ३ ॥

भा० टी०-जो मूर्ख अविवेकसे समझता है कि, यह कामिनी मेरे ऊपर प्रेम करती है वह उसके वश होकर खेलके पक्षीके समान नाच करता है ॥ ३ ॥

कोऽर्थान्प्राप्यनगर्वितोविषयिणो यस्यापदो-ऽस्तं गताः स्त्रीभिः कस्यनखंडितंभुवि मनः को नाम राजप्रियः ॥ कः कालस्य न गो-चरत्वमगमत्कोऽर्थी गतो गौरवं कोवा दुर्जनदुर्गमेषु पतितः क्षेमेण यातः पथि ॥ ४ ॥

सवैया-धनसे किसको नहिं गर्व भयो किस कामिक दुःख समूह नशा। किसके मन खंडित नाहिं किये जग कामिनि राजहिं प्यार कसा ॥ को कालके गालमें नाहिं पर्यो कोउ याचक गौरव मान लसा। दुर्जनके वशमें पडके सुखमारग माहिं जा कौन धसा ॥ ४ ॥

भा० टी०-धन पाकर गर्वी कौन न हुआ, किस विषयकी विपत्ति नष्ट हुई, पृथ्वीमें किसके मनको स्त्रियोंने खंडित न किया, राजाको प्रिय कौन हुआ, कालके वश कौन नहीं हुआ, किस याचकने गुरुता पाई, दुष्टोंकी दुष्टतामें पडकर संसारके पथमें कुशलतासे कौन गया ४ ॥

ननिर्मिता केन नदृष्टपूर्वा नश्रूयते हेममयी कुरंगी ॥ तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ॥ ५ ॥

दोहा–रचो न देख्यो नाहिं यहि, सुन्यो कनक मृग गात ।
तऊ राम तृष्णा स्वमति, नाश काल फिरि जात ॥५॥

भा० टी०–सोनेकी मृगी न पहिले किसीने रची, न देखी और न किसीको सुन पडती है तो भी रघुनन्दनकी तृष्णा उसपर हुई, विनाशके समय बुद्धि विपरीत होजाती है ॥ ५ ॥

गुणैरुत्तमतांयातिनोच्चैरासनसंस्थिताः ॥
प्रासादशिखरस्थोऽपिकाकः किंगरुडायते ॥६॥

सोरठा–गुणसे पाय बडाय, नहीं ऊंच बैठक टँगे ।
बैठि ऊंचघर जाय, कहीं काग होवै गरुड ॥ ६ ॥

भा० टी०–प्राणी गुणोंसे उत्तमता पाता है ऊँचे आसनपर बैठकर नहीं, कोटके ऊपरके भागमें बैठा कौवा क्या गरुड होजाता है ॥ ६ ॥

गुणाःसर्वत्रपूज्यंतेनमहत्योऽपिसंपदः ॥
पूर्णेन्दुः किंतथावंद्योनिष्कलङ्कोयथाकृशः ॥७॥

सोरठा–सब थल गुणहि पुजाय, नहीं महा तिहुं सम्पदा ।
बंदि कि तस विधु जाय, पूर क्षीण अकलंक जस ॥७॥

भा० टी०–सब स्थानोंमें गुण पूजे जाते हैं, बडी संपात्ति नहीं पूर्णिमाका पूर्णभी चन्द्रमा क्या वैसा वंदित होता है, जैसा विना कलंकके द्वितीयाका दुर्बल ॥ ७ ॥

परस्तुतगुणैर्यस्तुनिर्गुणोपिगुणीभवेत् ॥
इंद्रोऽपिलघुतांयातिस्वयंप्रख्यापितैर्गुणैः ॥ ८ ॥

दोहा–औरनके वर्णन किये, बिन गुणहू गुणवान ।
इन्द्रौ लघुताई लहै, निज मुख किये बखान ॥ ८ ॥

भा० टी०–जिसके गुणोंको दूसरे लोग वर्णन करते हैं वह निर्गुणभी हो तो गुणवान् कहा जाता है इन्द्रभी यदि अपने गुणोंकी आप प्रशंसा करें तो उनसे लघुता पाता है ॥ ८ ॥

विवेकिनमनुप्राप्ताग्रुणायातिमनोज्ञताम् ॥
सुतरांरत्नमाभातिचामीकरनियोजितम् ॥ ९ ॥

दोहा–पहुँचि विवेकी पुरुष पहँ, अति शोभा गुण पाव ।
घनी रत्नछबि तब कढै, जब लहि कनक जडाव ॥९॥

भा० टी०–विवेकीको पाकर गुण सुन्दरता पाते हैं, जब रत्न सोनामें जडा जाता है तब अत्यन्त सुन्दर देख पडता है ॥९ ॥

गुणैः सर्वज्ञतुल्योऽपिसीदत्येकोनिराश्रयः ॥
अनर्घ्यमपिमाणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते ॥ १० ॥

दोहा–गुणसे विष्णु समानहूं, विनु अवलंबहि नाहिं ।
होय अमोलौमणि तेऊ, कनक औलंबहि चाहि ॥ १०॥

भा॰ टी॰–गुणोंसे ईश्वरके सदृशभी निरालंब अकेला पुरुष दुःख पाताहै अमोल भी माणिक्य सोनाके अवलंबकी अर्थात् उसमें जडा-नेकी अपेक्षा करताहै ॥ १० ॥

अतिक्लेशेन ये अर्था धर्मस्यातिक्रमेणतु ॥
शत्रूणांप्रणिपातेन ते अर्थामा भवंतुमे ॥ ११ ॥

दोहा–अति कलेशकरि धर्म तजि, अथवा परि अरि पाँव ।
जो मिलती संपत्ति सो, मेरे पास न आव ॥ ११ ॥

भा॰ टी॰–अत्यन्त पीडासे, धर्मके त्यागसे और वैरियोंकी प्रणतिसे जो धन होते हैं सो मुझको नहीं हों ॥ ११ ॥

किंतयाक्रियते लक्ष्म्या यावधूरिवकेवला ॥
यातुवेश्येवसामान्यापथिकैरपिपूज्यते ॥ १२ ॥

दोहा–जो वधूतीयसम एकरति, तेहि संपति करु काह ।
जो वेश्यासम हो तेहि, भोगहि चलतो राह ॥ १२ ॥

भा॰ टी॰–उस संपत्तिसे लोग क्या करसक्ते हैं जो वधूके समान असाधारण है वेश्याके समान सर्वसाधारण हो वह पथिकोंकेभी भोगमें आ सक्ती है ॥ १२ ॥

धनेषु जीवितव्ये च स्त्रीषु चाहारकर्मसु ॥
अतृप्ताःप्राणिनःसर्वेयातायास्यंतियांतिच १३ ॥

दोहा–तिय जीवन धन अशनते, विनहि अघाने भोग।
और ए गए जाइ हैं जात हैं, सब ही प्राणी लोग ॥ १३ ॥

भा॰ टी॰–धनमें, जीवनमें, स्त्रियोंमें और भोजनमें. अतृप्त होकर सब प्राणी गये जातेहैं और जायँगे ॥ १३ ॥

क्षीयन्तेसर्वदानानि यज्ञहोमबलिक्रियाः ॥
नक्षीयतेपात्रदानमभयंसर्वदेहिनाम् ॥ १४ ॥

दोहा–क्षीण होहिं सब दान औ, यज्ञ होम बलि कीन।
पात्रदान सबको अभय, होय कबहुँ नहिं छीन ॥ १४ ॥

भा॰ टी॰–सब दान, यज्ञ, होम, बलि ये सब नष्ट होजातेहैं सत्पात्रको दान और सब जीवोंको अभयदान ये क्षीण नहीं होते॥ १४॥

तृणंलघुतृणात्तूलंतूलादपिचयाचकः ॥
वायुनाकिंननीतोऽसौमामयंयाचयिष्यति॥ १५॥

दोहा–तृण लघु तेंहिते लघु रुई, तेहिते याचक लोग ।
पवन उडावे नाहिं कस, डरेउ याचना योग ॥ १५ ॥

भा० टी०–तृण सबसे लघु होता है, तृणसे रुई हलकी होती है, रुईसेभी याचक, इसे वायु क्यों नहीं उडा लेजाता? वह समझता है कि, यह मुझसे भी मांगेगा ॥ १५ ॥

वरंप्राणपरित्यागो मानभंगेनजीवनात् ॥
प्राणत्यागेक्षणंदुःखंमानभंगेदिनेदिने ॥ १६ ॥

दोहा–मानभंग सहि जिवनसो, भलो प्राणकर त्यागु ।
प्राणत्याग क्षण एक दुख, मानभंग नित लागु ॥ १६ ॥

भा० टी०–मानभंगपूर्वक जीनेसे प्राणका त्याग श्रेष्ठ है, प्राणत्यागके समय क्षणभर दुःख होता है, मानके नाश होनेपर दिनदिन १६॥

प्रियवाक्यप्रदानेनसर्वेतुष्यंतिजन्तवः ॥
तस्मात्तदेववक्तव्यं वचने किं दरिद्रता ॥ १७ ॥

सोरठा–सबै अनंदित होयँ, मधुर वचनको पाइके ।
तेहिते बोलिय सोय, वचनहु कहा दरिद्रता ॥ १७ ॥

भा० टी०–मधुर वचनके बोलनेसे सब जीव संतुष्ट होते हैं, इस कारण उसीका बोलना योग्य है, वचनमें दरिद्रता क्या ? ॥ १७॥

संसारकटुवृक्षस्यद्वेफलेअमृतोपमे ॥
सुभाषितंचसुस्वादुसंगतिःसुजनेजने ॥ १८ ॥

दोहा—जक्तके कटुतरु फल दोई, अहै अमृत सम तूल ।
सरस वचन प्रिय औ सुजन, संगतिहू अनुकूल ॥१८ ॥

भा० टी०—संसाररूप कटुवृक्षके दोही फल हैं रसीला प्रियवचन और सज्जनके साथ संगति ॥ १८ ॥

बहुजन्मसुचाभ्यस्तंदानमध्ययनंतपः ॥
तेनैवाभ्यासयोगेनदेहमभ्यस्यतेपुनः ॥ १९॥

दोहा—दान पठन तप माहिं जो, जन्म जन्म अभ्यास ।
ताहीके संयोगते, फिरि फिरि देह प्रकाश ॥ १९ ॥

भा० टी०—जो जन्म २ दान, पठन, तप इनका अभ्यास किया जाता है उस अभ्यासके योगसे देहका अभ्यास फिर २ करता है १९

पुस्तकेषुचयाविद्यापरहस्तेषुयद्धनम् ॥
उत्पन्नेषुचकार्येषुनसाविद्यानतद्धनम् ॥ २० ॥

दोहा—विद्या पुस्तक जो रही, जो धन परकरमाहिं ।
काम परे विद्या न वह, अहै धनहु वह नाहिं ॥ २० ॥

भा० टी०–जो विद्या पुस्तकोंहीमें रहती है और दूसरोंके हाथोंमें जो धन रहता है, काम पडजानेपर न वह विद्या है न वह धन है ॥२०॥

इति वृद्धचाणक्ये षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः १७.

पुस्तके प्रत्ययाधीतेनाधीतंगुरुसन्निधौ ॥
सभामध्येनशोभेत जारगर्भइवस्त्रियः ॥ १ ॥

दोहा–प्रतिप्रतीति विनु गुरु पढ्यो, सोहँ न सभा सिधारि ।
ज्यों परपुरुषहि संगकृत, गर्भधारिकारि नारि ॥ १ ॥

भा० टी०–जिनने केवल पुस्तकके प्रतीतिसे पढा गुरुके निकट न पढा वे सभाके बीच व्यभिचारसे गर्भवाली स्त्रियोंके समान नहीं शोभते ॥ १ ॥

कृतेप्रतिकृतिंकुर्याद्धिंसने प्रतिहिंसनम् ॥
तत्र दोषो न पतति दुष्टे दुष्टं समाचरेत् ॥ २ ॥

तो०छं–उपकार करै उपकार करै, अरु मारन पै तेहि मारि लरै।
खलताइ करै खल ताइ करै, तहँ दोष नहीं मनमाहिं धरै२

भा० टी०–उपकार करनेपर प्रत्युपकार करना चाहिये, और

मारने पर मारना इसमें अपराध नहीं होता इस कारण कि दुष्टता करनेपर दुष्टताका आचरण करना उचित होता है ॥ २ ॥

यद्दूरंयद्दुराराध्यंयच्चदूरेव्यवास्थितम् ॥
तत्सर्वंतपसासाध्यंतपोहिदुरतिक्रमम् ॥ ३ ॥

दोहा—दूर होउ वा दूर वसु, दुराराध्यहू जोउ।
सो सब तपसे साधि है, तप बल सम नहिं कोउ ॥३॥

भा० टी०—जो दूर है, जिसकी आराधना नहीं होसकती और जो दूर वर्तमान है, वे सब तपसे सिद्ध होसकते हैं इस कारण सबसे प्रबल तप है ॥ ३ ॥

लोभश्चेदगुणेनकिंपिशुनतायद्यस्तिकिंपातकैः सत्यंचेत्तपसा च किं शुचिमनोयद्यस्तितीर्थेन किम् ॥ सौजन्यंयदिकिंगुणैः सुमहिमायद्यस्तिकिंमण्डनैः सद्विद्यायदि किंधनैरपयशो यद्यस्तिकिंमृत्युना ॥ ४ ॥

सवैया—लोभ तबै कस अवगुण आन दुजो कस पाप सबै लुतराई। सत्य रहे तपसे तब का मन शुद्ध वृथा तब तीरथ जाई ॥ शीलहुई फिरि का गुण और कहा

तिन भूषण जो महिताई । वेद भयो धनते तब का
मृत्यु कौन जबै अपकीरति छाई ॥ ४ ॥

भा० टी०-यदि लोभ है तो दूसरे दोषसे क्या, यदि चुगली है तो और पापोंसे क्या, यदि सत्यता है तो तपसे क्या, यदि मन स्वच्छ है तो तीर्थसे क्या, यदि सज्जनता है तो दूसरे गुणोंसे क्या, यदि महिमा है तो भूषणोंसे क्या, यदि अच्छी विद्या है तो धनसे क्या, यदि अपयश है तो मृत्युसे क्या ॥ ४ ॥

पितारत्नाकरोयस्यलक्ष्मीर्यस्यसहोदरी ॥
शंखोभिक्षाटनंकुर्यान्नादत्तमुपतिष्ठते ॥ ५ ॥

दोहा-पितु रत्नाकर लच्छिमी, सगी बहिन श्रुति गाव ।
शंख भीक मागै तऊ, धन विनु दिये न पाव ॥ ५ ॥

भा० टी०-जिसका पिता रत्नोंकी खानि समुद्र है, लक्ष्मी जिसकी बहिन, ऐसा शंख भीख मांगता है बिना दिया नहीं मिलता ॥ ५ ॥

अशक्तस्तुभवेत्साधुर्ब्रह्मचारीचनिर्धनः ॥
व्याधिष्ठोदेवभक्तश्चवृद्धानारीपतिव्रता ॥ ६ ॥

दोहा-शक्तिहीन साधू बनै, ब्रह्मचारि धनहीन ।
रोगी सुरप्रेमी तिया, वृद्ध पतिव्रत कीन ॥ ६ ॥

भा० टी०–शक्तिहीन साधु होता है, निर्धन ब्रह्मचारी, रोगग्रस्त देवताका भक्त होताहै और वृद्ध स्त्री पतिव्रता होती है ॥ ६ ॥

नान्नोदकसमंदानंनतिथिर्द्वादशीसमा ॥
नगायत्र्याः परोमन्त्रोनमातुर्दैवतंपरम् ॥ ७ ॥

सोरठा–अन्न वारि सम दान, नहीं द्वादशी सरिस तिथि ।
गायत्री बढि आन, मंत्र मातु बढि सुर नहीं ॥ ७ ॥

भा० टी०–अन्न जलके समान कोई दान नहीं है, न द्वादशीके समान तिथि, गायत्रीसे बढकर कोई मंत्र नहीं है, न मातासे बढ कर कोई देवता है ॥ ७ ॥

तक्षकस्यविषंदन्ते मक्षिकाया विषंशिरः ॥
वृश्चिकस्यविषंपुच्छेसर्वांगेदुर्जनेविषम् ॥ ८ ॥

दोहा–विष तक्षकके दंतमों, माखिनके शिरसंग ।
बीछिनके पूछन बसै, दुष्टनके सब अंग ॥ ८ ॥

भा० टी०–सांपके दांतमें विष रहता है, मक्खीके शिरमें विष है बिच्छूके पूंछमें विष है, सब अंगोंमें दुर्जन विषहीसे भरा रहताहै॥८॥

पत्युराज्ञांविनानारीह्युपोष्यव्रतचारिणी ॥
आयुराहरते भर्तुः सानारीनरकंव्रजेत् ॥ ९ ॥

बरवै–विनु पतिआयसु बरत करत जौ नारि ।
हरत आयु पियकी अरु नरक सिधारि ॥ ९ ॥

भा० टी०–पतिकी आज्ञा विना उपवास व्रत करनेवाली स्त्री स्वामीकी आयु हरती है और वह स्त्री आप नरकमें जाती है ॥ ९ ॥

नदानैःशुध्यतेनारीह्युपवासशतैरपि ॥
नतीर्थसेवयातद्वद्भर्तुः पादोदकैर्यथा ॥ १० ॥

मं० छ०–न शुद्ध तीर्थ जान ते, न सो उपाय दानते ।
यथा सुतीय पीयके, पखारि पाँय पीयके ॥ १० ॥

भा० टी०–न दानोंसे, न सैकडों उपवासोंसे, न तीर्थके सेवनसे स्त्री वैसी शुद्ध होती है, जैसी स्वामीके चरणोदकसे ॥ १० ॥

पाद्यशेषं पीतशेषं सन्ध्याशेषं तथैवच ॥
श्वानमूत्रसमं तोयं पीत्वाचांद्रायणंचरेत् ॥ ११ ॥

दोहा–चरणोंके धोते बचो, पीने संध्याशेष ।
श्वान मूत्र सम जासु पी, चांद्रायण निर्दोष ॥ ११ ॥

भा० टी०–पांव धोनेसे जो जल शेष रहजाता है, पीनेसे जो बचजाता है और सन्ध्या करनेपर जो अवशिष्ट जल है वह कुत्तेके मूत्रके समान है उसको पीकर चांद्रायणका व्रत करना चाहिये ॥ ११ ॥

दानेन पाणिर्नतु कंकणेन स्नानेन शुद्धिर्नतु

चन्दनेन ॥ मानेनतृप्तिर्नतु भोजनेनज्ञानेन मुक्तिर्नतुमण्डनेन ॥ १२ ॥

सवैया--करमें छवि दान दिये भरती न रतीभर कंकनके पहिरे। लहु शुद्ध शरीर नहान किये नहीं चंदन लेपहिते गहिरे । सन्मानसे तृप्त जो होत नितै न बने तस भोजनके बलते । नर ज्ञानहि युक्त समुक्ति लहै न जटा अरु छापहिके बलते ॥ १२ ॥

भा० टी०–दानसे हाथ शोभता है, कंकणसे नहीं, स्नानसे शरीर शुद्ध होताहै चन्दनसे नहीं, सम्मानसे तृप्ति होती है, भोजनसे नहीं, ज्ञानसे मुक्ति होती है, छाप तिलकादि भूषणसे नहीं ॥ १२ ॥

नापितस्यगृहेक्षौरंपाषाणेगन्धलेपनम् ॥ आत्मरूपंजलेपश्यञ्छक्रस्यापिश्रियंहरेत् १३ ॥

सोरठा--क्षौर किये घर नाइ, जलमें देखे रूप निज ।
घसि उपलै ते लाइ, चंदन इंद्रौ धन नशै ॥ १३ ॥

भा० टी०–नाईके घरपर बाल बनानेवाला, पत्थरसे लेकर चंदन लेपन करनेवाला, अपने रूपको पानीमें देखनेवाला इन्द्रभी हो तो उसकी लक्ष्मीको हरलेते हैं ॥ १३ ॥

सद्यः प्रज्ञाहरा तुण्डी सद्यः प्रज्ञाकरी वचा ॥ सद्यः शक्तिहरा नारी सद्यः शक्तिकरं पयः॥१४॥

तो० छं०-कुंदरू वरबुद्धिही कुंदकरे, वच सद्यहि तासु प्रकाशकरें अबला बलवानहि आसु हरे, तेहि पूरण क्षीर तुरंत भरे १४ ॥

भा० टी०-कुँदरू शीघ्रही बुद्धि हरलेता है और वच झटपट बुद्धि देती है स्त्री तुरन्तही शक्ति हरलेती है, दूध शीघ्रही बल करदेताहै १४॥

यदि रामायदि च रमा यदितनयोविनयगुणोपेतः ॥ तनयेतनयोत्पत्तिः सुरवरनगरे किमाधिक्यम् ॥ १५ ॥

दोहा-कामिनि लक्ष्मी विनययुत, सुत गुण भूषित भेष ।
पौत्र सुधन जो होय तो, स्वर्गहि कहा विशेष ॥ १५॥

भा० टी०-यदि कांता है, यदि लक्ष्मी वर्तमान है, यदि पुत्र सुशीलतादि गुणसे युक्त है और पुत्रके पुत्रकी उत्पत्ति हुई हो फिर देवलोकमें इससे अधिक क्या है ॥ १५ ॥

परोपकरणंयेषांजागर्तिहृदयेसताम् ॥
नश्यंतिविपदस्तेषां संपदः स्युः पदेपदे ॥१६॥

दोहा--जिन सज्जन मन माहिं नित, जागत पर उपकार ।
वेगि तासु नशु विपति अति, पगपग मिलु धन भार १६

भा० टी०-जिन सज्जनोंके हृदयमें परोपकार जागता रहता है उनकी विपत्ति नष्ट होजाती है और पदपदमें सम्पत्ति होती है॥१६॥

आहारनिद्राभयमैथुनानि समानि चैतानि नृणां पशूनाम् ॥ ज्ञानेनराणामधिकोविशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समाना ॥ १७ ॥

दोहा—निद्रा भोजन भोग भय, मनुज सरिस पशुमाहिं ।
मतिहि नरनके बाढि है, तेहि विन पशुसम आहिं॥१७॥

भा० टी०–भोजन, निद्रा, भय, मैथुन ये मनुष्य और पशुओंके समानही हैं, मनुष्योंको केवल ज्ञान अधिक विशेष है ज्ञानसे रहित नर पशुके समान है ॥ १७ ॥

दानार्थिनोमधुकरायदिकर्णतालै-
र्दूरीकृताः करिवरेण मदान्धबुद्धया ॥
तस्यैवगण्डयुगमण्डनहानिरेषा
भृङ्गाःपुनर्विकचपद्मवनेवसंति ॥ १८ ॥

खा०छ०-ज्यौं मदान्ध गज कर्ण हिलाई, पिवते मधुकहँ अलिन दुराई । गे कपोल दुहुँ भूषण वाही, भँवर उडी कमलनपर जाही ॥ १८ ॥

भा० टी०–यदि मदांध गजराजने मधुके अर्थी भौंरोंको मदांधतासे कर्णके तालोंसे दूर किया तो यह उसीके दोनों गण्डस्थलोंकी

शोभाकी हानि भई भौंरे फिर विकसित कमलमें बसते हैं तात्पर्य यह है कि, यदि किसी निर्गुण मदांध राजा वा धनीके निकट कोई गुणी जा पडे उस समय मदान्धोंको गुणीका आदर न करना मानो अपनी लक्ष्मीकी शोभाकी हानि करनी है, काल निरवधि है और पृथ्वी अनन्त है गुणीका आदर कहीं न कहीं किसी न किसी समय होगाही ॥ १८ ॥

राजावेश्यायमश्चाग्निस्तस्करोबालयाचकौ ॥
परदुःखंनजानंतिह्यष्टमोग्रामकण्टकः ॥ १९ ॥

दोहा–राजा वेश्या अनल यम, बालक याचक चोर ।
ग्रामकण्टको आठ यह, परदुख लखे न थोर ॥ १९ ॥

भा० टी०–राजा, वेश्या, यम अग्नि, चोर, बालक, याचक और आठवां ग्रामकंटक अर्थात् ग्रामनिवासियोंको पीडा देकर अपना निर्वाह करनेवाला ये दूसरेके दुःखको नहीं जानते ॥ १९ ॥

अधःपश्यासि किंबाले पतितंतवकिंभुवि ॥
रेरे मूर्खनजानासिगतंतारुण्यमौक्तिकम् ॥२०॥

दोहा–का तिय तू नीचे लखति, गिरेउ कछू महि बीच ।
तरुणाई मोती गयो, तैं नाहिं जानत नीच ॥ २० ॥

भा० टी०–हे बाले ! तू नीचे क्यों देखती है पृथ्वीपर तेरा क्या

गिरपडा? तब स्त्रीने कहा रेरे मूर्ख ! नहीं जानता कि, मेरा तरुणतारूप मोती चलागया ॥ २० ॥

व्यालाश्रयापि विफलापि सकण्टकापि
वक्रापि पंकिलभवापि दुरासदापि ।
गन्धेनबन्धुरासि केतकिसर्वजन्तो-
रेकोगुणःखलुनिहंतिसमस्तदोषान् ॥ २१ ॥

सोरठा–चक्र दुर्लभ अहि वास, विफल पंकजानि कंटकी ।
सकल दोष किय नास, गंध गुणै केतकिहितैं ॥ २१॥

भा० टी०–हे केतकी ! यद्यपि तू सांपोंका घर है, विफल है, तुझमें काँटेभी हैं, टेढी है, कीचडमें तेरी उत्पत्ति है और तू दुःखसे मिलतीभी है तथापि एक गंधके गुणसे सब प्राणियोंकी बन्धु होरही है, निश्चय है कि, एकभी गुण दोषोंका नाश करदेता है ॥ २१ ॥

इति वृद्धचाणक्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इति चाणक्यनीतिदर्पणभाषाटीका समाप्ता ।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
" लक्ष्मीवेंकटेश्वर " स्टीम् प्रेस,
कल्याण–मुंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
" श्रीवेंकटेश्वर " स्टीम् प्रेस,
खेतवाडी–मुंबई.